वितस्ता

हिन्दी परिषद्
स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग
कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर
की
मुख पत्रिका

सम्पादक

डा० रमेश कुमार शर्मा

वसन्त अंक



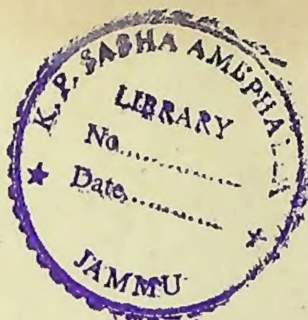
खंड ९, अंक १

क्रम

सम्मतियाँ

सम्पादकीय





GOVERNOR
JAMMU & KASHMIR

कश्मीर आकर मुझे 'वितस्ता' के कई अंक देखने का अवसर मिला। पत्रिका उच्चकोटि की है। सामग्री और सम्पादन, दोनों ही प्रशंसनीय है। पत्रिका की सब से बड़ी विशेषता यह है कि इसमें उस [illegible] कोई चिह्न नहीं है जो कभी कहीं राष्ट्रीय और प्रान्तीय भाषाओं के बीच पाया जाता है। वरन इसमें कश्मीरी भाषा पर गवेषणापूर्ण लेख निकलते हैं। यह प्रयत्न हर दृष्टि से सराहनीय है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि 'वितस्ता' हिन्दी की सेवा में दृढ़संकल्प रहेगी और दिनों दिन उन्नति करेगी।

रैणावारी, श्रीनगर–३
5-6-1973

मान्यवर **श्री० डा० रमेशकुमार शर्मा**
आचार्य एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
कश्मीर विश्वविद्यालय
श्रीनगर, कश्मीर ।

प्रिय शर्मा जी । नमस्ते ।

वितस्ता का वसन्तांक खंड ८, अंक १, बहुत दिन हुए प्राप्त हुआ था । निरन्तर अस्वस्थ रहने के कारण मैं सम्पूर्ण पढ़ न सका । गत अंक के सम्बन्ध में मैंने जो लिखा था, मित्रों का विचार था मैंने अधिक प्रशंसा की है । किन्तु वास्तविकता जो हो उसको क्या किया जाये । यह अंक मुझे पूर्व से भी अधिक महत्वपूर्ण और रोचक देख पडा । आपका लेख "१९४२ के कुछ सस्मरण" कितना रोचक और महत्वपूर्ण था, इसको मैंने कई बार पढ़ा, मेरे घर वालों और मित्रों ने पढ़ा । इसकी प्रशंसा कौन नहीं करेगा । मुझसे १९२२ से ही भारत के क्रान्तिकारी आकर मिलते थे । मेरे ऊपर तेरह व्यक्तियों के पालन पोषन का भार था । इस कारण मैं पीछे ही रहता था । आपके पूज्य पिताजी का कुछ समाचार पत्रों में पढ़ा करता था पर मुझे वास्तविकता का ज्ञान न था ।

डा० अनूपचद्र चन्दोला के लेख "संगीत व्यवस्था·········" का डा० सरोजनी शर्मा का अनुवाद अमूल्य कृति है । संगीत के सम्बन्ध में जन्म से ही मैं औरंगज़ेब का अनुयायी रहा हूँ । लेख न समझ सका, कितना दुर्भाग्य है । "सामाजिक उपन्यास : हिंदी के संदर्भ में" डा० शशिभूषण सिंहल का लेख भी सब के लिये महत्वपूर्ण है ।

डा० मुहम्मद अयूब खां के लेख में छायावाद और रहस्यवाद पर भी विद्वतापूर्ण दृष्टि डाली गई है, मैं विद्वता की ही प्रशंसा कर सकता हूँ क्योंकि मैं वेदों का अनुयायी हूँ ।

कुमारी इन्द्रजीत कौर का "निज सन्देश" मैंने कई बार पढ़ा । कौर शब्द से पता चलता है कि यह कन्या सिखों की होगी, उसका हिन्दी का संस्कृत का ज्ञान भी सराहनीय है । वास्तव में पंजाबी की भी मां वही है जो हिन्दी की है ।

सब से बढ़ कर सेवा "वितस्ता" तो कश्मीरी भाषा की करती है, कश्मीरी भाषा तो वैदिक और संस्कृत भाषा की पुत्री है, त्रिलोकी नाथ गंजू का इस पर शोध कार्य समाप्त होगा तो संसार चकित हो जायेगा । प्रो० त्रिलोकी नाथ गंजू के कार्य पर विस्तार से लिखना होगा । मेरी बड़ी इच्छा है ।

'वितस्ता' का प्रभाव तो अन्य कालिज-पत्रिकाओं पर भी पड़ा है ज्ञात होता है। श्री प्रताप महाविद्यालय का 'प्रताप' भी अबके सराहनीय लेखों से भरा है। उसका हिन्दी भाग भी सराहनीय है।

भवदीय
रामचन्द्र कौल "अभय"

++++++++++++++++

एन० वी० अनन्तरामय्या
त्रिभाषा विद्वान्
विद्यामन्दिरम्
दूरवाणीनगरम्, बेंगलूर–१६
२४-५-७३

प्रिय भाई रमेश जी,

सादर प्रणाम। वितस्ता ("वसन्त अंक") यथा समय मिल गयी। गरमी की छुट्टी के कारण जल्दी पढ़ सका। बहुत अच्छा लगा। उसमें आपका १६४२ का संस्मरण बहुत पसन्द लगा। संगीत से अनभिज्ञ (खासकर हिन्दुस्तानी) होने के कारण डा० सरोजिनी जी का लेख रोचक न हुआ। इतना कह सकता हूँ कि वह विद्वतापूर्ण है। अवशिष्ट लेख भी काफ़ी योग्यता रखते हैं। बीच-बीच में जो नीतिवाक्य जोड़े गये हैं, वे काफ़ी प्रभाव डालते हैं। आशा करता हूँ कि "वितस्ता" दिन व दिन सुधरती जायेगी। अब व्यक्तिगत विषय का प्रस्ताव करना चाहता हूँ।

विशाल भारत के बन्द होने के बाद हिन्दी में पढ़ना और लिखना भी बन्द हो गये हैं। अब मैं हिन्दी का प्रचार कर नहीं पाता। कारण, स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद इस देश में हिन्दी के बारे में आस्था कम हो गयी। इसलिये मैं संस्कृत पढ़ाने लगा हूँ। संस्कृत साहित्य का पूरा विकास काश्मीर में ही हुआ है। एक बार काश्मीर देखने की इच्छा है। आपके रहते समय ही वहाँ आना अच्छा है। लेकिन अभी ४-५ साल आ नहीं सकता।

आपके पूज्य स्व० पिताजी के चरित्र तथा आप लोगों की सद्भावना ने मेरे जीवन पर बहुत प्रभाव डाला है। 'विशाल भारत' ने मुझे एक सच्चा नागरिक तथा देश भक्त बनाया। लेकिन देश के लिये आप लोगों ने जो त्याग, बलिदान किया है, उसके आगे मेरा तो ताड़ के सामने तिल है। आप लोग—तो एक तरह से राम, कृष्ण आदियों की तरह अवतारी पुरुष हैं। मैं और आप दोनों एक ही उम्र वाले हैं। पर आप १५ की आयु में ही जीवन-मरण की समस्या का सामना कर रहे थे। मैं तो

सिर्फ़ विद्याभ्यास में लगा था। एक तरह अबोध सा रहता था। आप का संस्मरण पढ़ कर दिल को बड़ा दर्द हो रहा है। आपके पिता जी मनुष्य मात्र नहीं थे। देवता पुरुष थे। जो भी व्यक्ति सिर्फ़ जेल में दिन काट कर आये, वे करोड़पति बन गये हैं। पूज्य शर्मा जी ने मन्त्रीपद को लात मार दी। अपने को मैं धन्य समझता हूँ कि एक त्यागी पुरुष के दर्शन कर सका। उनके त्याग का फल अन्य लोग (अनुचर) लूट रहे हैं।

आपके पिताजी का लिखा "समीक्षा और संघर्ष" पढ़ने को नहीं मिला। पढ़ने की बड़ी इच्छा है। इसकी पूर्ति आप ही कर सकते हैं।

आगरा से श्रीनगर कितनी दूरी पर है? बेंगलूर से कितना होता है? आप काश्मीरी भी जानते होंगे? संस्कृत का क्या स्थान है? सभ्यता और संस्कृति आगरे की तरह है? या दूसरी तरह?

अकाल पड़ने से वस्तुओं का भाव आस्मान पहुँच गया है। पर्याप्त पानी ही नहीं मिलता। लकड़ी 10 Kg, को दो रुपये हो गये हैं। सिर्फ नमक आसानी से मिलता है। सरकार की अदक्षता से देश की स्थिति गंभीर हो गयी है।

ज्यादा लिख डाला। सोचकर न लिखा।

आपका विनीत

एन० वी० अनन्त रामय्या

++++++++++++ ++++

क्षेमचन्द्र 'सुमन' फोन—निवास : २१२१३१ कार्यालय : ३८६२४७

अजय निवास, दिलशाद कालोनी, शाहदरा, दिल्ली-३२

१४ मई, ७३

प्रिय भाई रमेश जी,

आपके द्वारा प्रेषित 'वितस्ता' का 'वसन्त अंक' मिला। इसके माध्यम से आप कश्मीर जैसे अहिन्दी भाषी प्रदेश में हिन्दी लेखन का जो यज्ञ रचा रहे हैं, वह निश्चय ही अभिनन्दनीय है। इस अंक में आपके 'सन् ४२ के कुछ संस्मरण शीर्षक लेख पढ़कर आपके स्वनामधन्य पिता पं० श्रीराम शर्मा की याद ताजा हो गई। यदि आप उनकी 'संघर्ष और समीक्षा' नामक पुस्तक की १ प्रति भिजवा सकें तो कृपा होगी। पं० पद्मसिंह शर्मा के माध्यम से मेरा उनका परिचय था। आशा है सानन्द हैं। कृपा भाव बनाए रहें। पं० बालाप्रसाद शर्मा आपके ताऊ जी भी गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर में पढ़ाते थे।

स्नेह

क्षेमचन्द्र 'सुमन'

++++++++++++++++

तार—'राष्ट्रभाषा' वर्धा दूरभाष—४५

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा

रामेश्वर दयाल दुबे
परीक्षामन्त्री

हिन्दीनगर, वर्धा
ता० २७-५-७३

आदरणीय श्री रमेश कुमार शर्मा जी,

सप्रेम प्रणाम ! आप के द्वारा भेजा हुआ वितस्ता का वसन्त अंक प्राप्त हुआ। बड़ी ठोस सामग्री आपने इसमें प्रस्तुत की है। सहयोगियों का आन्तरिक सहयोग आप को प्राप्त है, इसके लिये आप मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार कीजिये। आपके और आपके सहयोगियों ने, शिष्यों ने, श्रीनगर विश्वविद्यालय में हिन्दी का अच्छा वातावरण तैयार कर दिया है, इसे देखकर किसे प्रसन्नता न होगी।

श्री त्रिलोकी नाथ गंजू के अध्ययन पूर्ण लेख काफी जानकारी दे रहे हैं। विश्वास है उनका शोध कार्य, 'शोध' संज्ञा का सार्थक बनावेगा। मेरी बधाई उन तक अवश्य पहुँचा दें।

१९४२ के कुछ संस्मरण लिख कर आपने एक बहुत अच्छा कार्य किया है। उन्हें आप विस्तार से लिख डालते तो अच्छा होता। त्याग (तथाकथित त्याग) की हुँडिया भुँजाने वाले जाने तो कि नींव के पत्थर दूसरे ही थे।

श्रद्धेय शर्मा जो (श्रीराम शर्मा) का स्नेह मुझे प्राप्त था। जब भी वर्धा आते थे, घर पर कुछ समय अवश्य बिताते थे। उनके प्रखर व्यक्तित्व का लोहा कौन नहीं मानता था ?

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आपके विभाग का एक विद्यार्थी उन पर शोध कार्य कर रहा है।

आपका पूरा परिवार ही आन्दोलन में उतरा था। कैसे-कैसे संकट सबने झेले थे, उनका स्मरण कर सिहर उठता हूँ। यह सब लिपिबद्ध हो जाना चाहिये।

सभी सहयोगियों से मेरा प्रणाम कहें।

आपका
रामेश्वर दयाल दुबे

++++++++++++++++

८१८ कुण्डेवालान
अजमेरी गेट
दिल्ली ११०००६
१५. ६. ७३

प्रिय बहिन,

वितस्ता का वसन्त अंक पाकर बहुत प्रसन्नता हुआ। काफी अंश पढ़ कर प्रकृति की सुरम्य स्थली कश्मीर से ऐसी ही पत्रिका प्रकाशित होनी चाहिये। सामग्री

न केवल सुन्दर और उपयोगी है बल्कि उस पर गहरे अध्यापन की छाप भी है। कश्मीरी भाषा और साहित्य के सम्बन्ध में जो लेख हैं वे जानकारी पूर्ण है।

डॉ० रमेश जी के संस्मरण पढ़ कर पुराना युग चित्रित हुआ। क्या वे दिन फिर नहीं आवेंगे। युग और मूल्य बदल जाने पर भी उसी भावना की जरूरत है। तपस्या और मर मिटने की साध।

मेरी बधाई। अंक संग्रहणीय है और किसी भी विश्वविद्यालय के लिये गर्व करने योग्य है।

स्नेही
विष्णु प्रभाकर

++++++++++++++++

डा० महावीर सरन जैन,
डी. फिल्. डी. लिट्
अध्यक्ष
स्नातकोत्तर हिंदी एवं भाषाविज्ञान विभाग,
जबलपुर विश्वविद्यालय, जबलपुर दिनांक २१. ५. ७३

सम्मान्य बंधुवर,

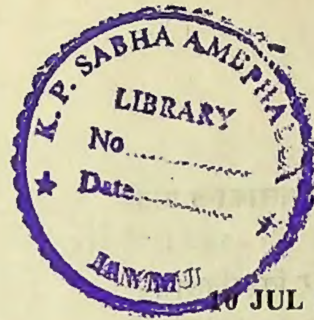
वितस्ता का वसत अंक (खंड ८, अंक १) प्राप्त हुआ। इस अंक के साथ अनेक पुरानी स्मृतियाँ सजग हो उठीं। विशेष रूप से १६४२ के कुछ संस्मरण' पढ़कर आपके घर-बल्काबस्ती, आगरा—के अनेक रूप एवं बिम्ब सजीव हो उठे।

श्री त्रिलोकीनाथ गंजू का 'कश्मीरी भाषा के सम्बन्धु: शब्द' शीर्षक लेख नयी दृष्टि प्रदान करता है। डॉ अनूपचन्द चन्दोला के शोध-पत्र Some Systems of Musical Scales and Linguistic Principles' का डॉ० सरोजिनी शर्मा ने हिन्दी अनुवाद करके हिन्दी के पाठकों के लिए स्तुत्य कार्य किया है।

यह पत्रिका काश्मीर के हिन्दी-जगत की वैचारिकता का बोध कराती है तथा वहाँ के जीवन की संवेदनाओं के विविक्षित अर्थों की अभिव्यक्ति भी कराती है। इससे अधिक एक पत्रिका से और क्या अपेक्षा की जा सकती है?

आपका
महावीर सरन जैन

++++++++++++



डा० लक्ष्मीनारायण दुबे
एम०ए पी-एच० डी०, 'साहित्यरत्न'
असिस्टेन्ट, प्रोफेसर, हिन्दी-विभाग
सागर, विश्वविद्यालय, सागर [म० प्र०]

10 JUL 1973

प्रिय डॉ० शर्मा जी,

सादर नमस्कार।

आपके कुशल तथा निष्णात सम्पादन में हिन्दी परिषद् की प्रकाशित होने वाली मुख पत्रिका 'वितस्ता' का वसन्तांक मिला। धन्यवाद।

मैं आपका अत्यंत आभारी हूँ कि आपने मुझे उपरिलिखित अंक प्रेषित कर स्मरण किया। मेरा साधुवाद स्वीकार कीजिए।

'वितस्ता' एक स्तरीय, प्रवुद्ध तथा सराहनीय पत्रिका है इसका स्तर पर्याप्त उत्कृष्ट तथा प्रशंसनीय है। इसकी सामग्री सर्वतोमुखी और समृद्ध है। काश्मीर की संस्कृति तथा साहित्य को इसमें सफल-सरस वाणी मिली है।

इस पत्रिका के माध्यम से सर्वथा स्पष्ट है कि काश्मीर विश्वविद्यालय का हिन्दी विभाग उत्तरोत्तर उन्नति तथा प्रगति के पथ पर अग्रसर है जिसका श्रेय आपको, आपके सहयोगी प्राध्यापकों तथा स्नातकोत्तर छात्र छात्राओं को है। इस श्रेष्ठ पत्रिका के लिए मैं स्नातकोत्तर हिन्दी विभागीय परिषद् को हार्दिक बधाई देता हूँ।

आपका सन् १९४२ की क्रांति का संस्मरण पढ़कर विशेष हर्ष हुआ। जैसा कि आपने उसमें लिखा है उपयुक्त अवसर तथा अवकाश मिलने पर आप अपने विस्तृत संस्मरण अवश्य लिखिए क्योंकि उनमें साहित्यिक संस्मरणों का भी समावेश है। अन्य रचनाएँ पठनीय तथा सुरुचिपूर्ण हैं।

आपकी पत्रिका से मैं इतना प्रभावित हुआ कि मेरा विश्वास है कि विश्वविद्यालयों के प्रत्येक हिन्दी विभाग में इसी प्रकार पत्रिका का नियमित तथा स्थायी प्रकाशन होना चाहिए।

मेरे योग्य सेवा सूचित करते रहिये।

पुनः मंगल कामनाओं सहित,

भवदीय,
साहित्य मार्तण्ड डा० लक्ष्मीनारायण दुबे
स-४४, सागर विश्वविद्यालय, सागर, [म० प्र०]

++++++++++++++++

प्रेषक
डा० कमलाकान्त पाठक
आचार्य और अध्यक्ष हिन्दी विभाग,
नागपुर विश्वविद्यालय
नागपुर–१० (440010)

नागपुर
१२-६-७३

प्रति
डॉ० रमेशकुमार शर्मा
आचार्य और अध्यक्ष हिन्दी विभाग,
कश्मीर विश्वविद्यालय
श्रीनगर कश्मीर

प्रिय डॉ० शर्मा,

मुझे आपके विभाग की हिन्दी परिषद् की 'वितस्ता' नियमित रूप से प्राप्त होती रही है, जिसके लिए मैं आपका आभारी हूँ। आप इस पत्रिका द्वारा हिन्दी भाषा और उसके साहित्य के साथ-साथ कश्मीरी भाषा और उसके साहित्य के संबंध में भी उच्चस्तरीय निबन्धादिक प्रस्तुत करते रहे हैं, यह प्रसन्नता का विषय है। इस वार्षिक में शोध-निबन्ध, उच्चस्तरीय समीक्षात्मक लेख, विभागीय प्रतिवेदन तथा सर्जनात्मक रचनाएँ आदि समवेत रूप में उपलब्ध हो जाती हैं। आप इस पत्रिका द्वारा बहुत सुन्दर साहित्यिक कार्य सम्पादित कर रहे हैं। इसके लिए आप और आपके सहयोगी प्राध्यापक तथा उत्साही विद्यार्थी साधुवाद के पात्र हैं। मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ स्वीकार कीजिएगा। 'वितस्ता' निश्चय ही कश्मीर विश्वविद्यालय की महत्वपूर्ण उपलब्धि सिद्ध होगी।

भवदीय
कमलाकान्त पाठक

++++++++++++++++

१६८ केन्द्रीय राजस्व भवन
नई दिल्ली—११०००१
२५. ५. ७३

आदरणीय डा० साहब,
सादर नमस्ते

गत मास आपने वितस्ता की एक प्रति मुझे सस्नेह दी थी। उस पर लगी हुई मुहर से यह विदित हुआ कि प्रति सम्मति के लिए थी। आप जैसे कर्मठ अध्यवसायी एवं हिन्दी सेवा में धैर्य पूर्वक लीन विद्वान द्वारा सम्पादित 'वितस्ता' के लिए मैं सम्मति

लिखूँ, इसमें मुझे कोई तुक नहीं दीखती। और फिर जब कि हिन्दी के प्रकाण्ड विद्वान इसकी भूरी-भूरी प्रशंसा उचित ही करते रहे हैं, तो ऐसी दशा में मेरे लिए इसकी सम्मति की कामना लहू लगा कर शहीदों में दाखिल होना ही है। ख़ैर भले ही इसे स्वार्थ वश क्यों न समझा जाए मैं यह कार्य अवश्य करूँगा। क्योंकि लगभग चार वर्ष कश्मीर में रहकर भाषा शिक्षक के नाते कश्मीरी भाषा सम्बन्धी अपने विचारों को व्यक्त करने का मार्ग दर्शन 'वितस्ता' द्वारा हुआ है। श्री त्रिलोकीनाथ गंजू के दो लेख 'कश्मीरी भाषा के शब्द वातायन से' और 'कश्मीरी के भाषा के सम्बन्धु शब्द' कश्मीरी भाषा के शब्दों से पूर्ण रूपेण परिचय कराते हैं। इस प्रकार के पहले प्रकाशित हुए और आगे छपने वाले लेखों से लाभान्वित होने की मेरी हार्दिक इच्छा आप अवश्य पूरी करेंगे, ऐसा मेरा विश्वास है। भाई अय्यूब साहब का छायावाद पर लेख हिन्दी साहित्य की प्रमुख विचारधारा में उनकी गहरी पैठ का द्योतक है। आपके संस्मरण को पढ़कर यह सिद्ध हो जाता है प्रतिकूल परिस्थितियों में भी साहित्यकार, साहित्यकार ही रहता है। चाहे वह शिक्षक हो, चाहे व्यापारी, चाहे वरिष्ठ अधिकारी और चाहे देश सेवा के लिए कारागार यात्री। उसके भीतर का साहित्यकार अमर है। 'वितस्ता' विभिन्न साहित्यिक विधाओं का विकास करने में अविस्मरणीय योगदान दे रही है। इसमें लेशमात्र भी संदेह नहीं।

आपका

मु० मसऊद खाँ

हिन्दी शिक्षक

++++++++++++++++

डा० जगभूषण, एम.ए., पी-एच. डी,
हिन्दी विभाग, भगवानदास मोदी कॉलेज,

लक्ष्मणगढ़-सीकर (राजस्थान)
२५-११-७२

आदरणीय डा० शर्मा,

सप्रेम नमस्कार।

गत मास आगरा में प्रिय भाई प्रो० सुरेशचन्द्र शर्मा ने 'वितस्ता' का वसन्त अंक, खण्ड ८, अंक १ सम्मति देने हेतु दिया था। व्यस्तता के कारण अपनी सम्मति देर से भेजने के लिए क्षमा चाहता हूँ।

यों तो देश के अन्य विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग भी पत्रिका प्रकाशित कर रहे हैं लेकिन 'वितस्ता' का प्रकाशन अत्यन्त सराहनीय कदम है और उसके मुख्य प्रेरक एवं कर्णधार के रूप में आप हार्दिक बधाई के पात्र हैं क्योंकि 'वितस्ता' देश के अहिन्दी भाषी राज्य के विश्वविद्यालय मात्र की पत्रिका नहीं अपितु उस राज्य के विश्वविद्यालय की पत्रिका भी है जिसमें पड़ौस के विदेशी प्रभाव के कारण राष्ट्र-विरोधी तत्वों को उकसाया जाता है।

कश्मीर प्राचीन काल में भारतीय दर्शन, साहित्य एवं संस्कृति का केन्द्र रहा है। किन्तु उसका यह पक्ष इस समय अनेक कारणों से पर्याप्त दब गया है। 'वितस्ता' के माध्यम से कश्मीर का यह पक्ष उभर कर कश्मीर एवं देश की जनता के सामने आयेगा जिसका देश की भाषात्मक एकता की दृष्टि से बड़ा सुष्ठु प्रभाव पड़ेगा। श्री त्रिलोकीनाथ गंजू के कश्मीरी भाषा सम्बन्धी दोनों लेख तथा डा० भूषणलाल कौल का 'कश्मीरी भाषा की दो उल्लेखनीय प्रवृत्तियों' और श्री फूला राज़दान का 'कश्मीरी कृष्ण काव्य का उद्भव और विकास' लेख इस दिशा में अच्छा काम करेंगे। पत्रिका के आगामी अंको में इस ओर और अधिक ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है।

'वितस्ता' में सामग्री की विविधता है और वह कश्मीर की स्थानीय विशेषताओं और मान्यताओं को सामने लाती है। आप अपने विभाग के प्राध्यापकों और छात्रों के अतिरिक्त देश व विदेश के विद्वानों के लेख भी प्रकाशित करते हैं, यह प्रशंसनीय प्रयास और कदम है। 'सगीत व्यवस्था की कुछ पद्धतियों और भाषा विज्ञान के सिद्धान्त' जैसा सुन्दर एवं शोधपूर्ण लेख आपके इसी उद्योग का सुफल है।

मैं 'वितस्ता' की उत्तरोत्तर प्रगति की कामना करता हूँ।

आदरपूर्वक,

भवदीय
जगभूषण

सेवा में,
डा० रमेशकुमार शर्मा
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
कश्मीर विश्वविद्यालय,
श्रीनगर (भारत)।

++++++++++++++++

योग्य गुरु शिष्य के अपराधों को उसी प्रकार क्षमा कर देता है जैसे पिता पुत्र की उद्दण्डदता को तथा मित्र मित्र के दोषों को।

*   *   *

मुँह पर मीठा बोलने वाला ही वहुधा पीठ पीछे छुरा घोंपता है। सज्जन इसी प्रकार की मृत्यु की कामना करते हैं और स्वयं न कड़ुआ बोलते हैं और न पीछे से आघात करते हैं।—**सम्पादक**

*   *   *

वितस्ता

(१९७४ ई०—वसन्तंक)



मनोमयः प्राणशरीरो भारूपः
सत्यसंकल्प आकाशात्मा सर्वकर्मा
सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरसः
सर्वमिदमभ्यात्तोऽवाक्यनादरः

छान्दोग्योपनिषद् ३/१४/२

[(वह ब्रह्म) मनोमय, प्राणशरीर, प्रकाशस्वरूप, सत्य-संकल्प, आकाशशरीर, सर्वकर्मा, सर्वकाम, सर्वगन्ध, सर्वरस, इस सम्पूर्ण जगत को सब ओर से व्याप्त करनेवाला, वाक्‌रहित और सम्भ्रमशून्य है ।]

गुलामी के सुख

परमश्रेष्ठ श्रीमान् लक्ष्मीकान्त झा
राज्यपाल, जम्मू तथा कश्मीर एवं कुलपति, कश्मीर विश्वविद्यालय ।

[कुलपति महोदय का यह लेख उनकी पुस्तक "मैंने कहा" से लिया गया है। यह पुस्तक सूर्यकुमारी पुस्तकमाला के अन्तर्गत (न० ३३), नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, द्वारा सन् १९३४ में प्रकाशित की गई थी और इसका परिवर्धित संस्करण सन् १९६५ में प्रकाशित किया गया था।

इस पुस्तक में २४ ललित निबन्ध संकलित हैं। जैसा कि परमश्रेष्ठ राज्यपाल महोदय ने पुस्तक की भूमिका में लिखा है, उन्होंने इस पुस्तक में "एक नई ही शैली के प्रयोग की चेष्टा की है और इसके निबन्ध उस शैली के हैं जिसके अंग्रेजी के व्यक्तित्व प्रधान-निबन्ध (Essays in personal style) हुआ करते थे।" इस पुस्तक में संकलित निबन्ध 'सरस्वती', 'हंस', 'माया' तथा 'आज' आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं।

ये निबन्ध आई० सी० एस० में चुने जाने से पूर्व राज्यपाल महोदय ने लिखे थे। 'गुलामी के सुख' निबन्ध को हमने इसलिए चुना है कि उसमें कही गई 'बात' जितनी तब सत्य थी उतनी ही आज भी है।

हम अपने कुलपति के प्रति आभार प्रकट करते हैं, इस निबन्ध को 'वितस्ता' में प्रकाशित करने की कृपापूर्ण अनुमति देने के लिए।] —**सम्पादक**

शाम को मैं टहलकर घर आया तो देखा कि बिलकुल अँधेरा है। मालूम हुआ कि अचानक बिजली की बत्तियाँ बुझ गईं, फ्यूज़ जल गया था। था। एक मिस्त्री को बुलवाया। उसने कहा—'कोई रोशनी लाइए।' बाज़ार से एक मोमबत्ती मंगवाई। वह लाइन ठीक करने लगा।

विज्ञान का थोड़ा बहुत ज्ञान मुझे है। 'थोड़ा बहुत ज्ञान' से मतलब यह कि खराबी क्या हुई थी यह तो मैं समझ सकता था, पर उसे दूर करने में असमर्थ था। यदि मैं कुछ न जानता रहता तो मैं अन्यमनस्क होकर दूर रहता। यदि अधिक जानता रहता तो शायद खद मरम्मत कर लेता। थोड़ा



परमश्रेष्ठ श्रीमान् लक्ष्मीकान्त झा

जम्मू-कश्मीर के नये राज्यपाल तथा कश्मीर विश्वविद्यालय के नये कुलपति का 'वितस्ता' परिवार स्वागत करता है।

प्रसिद्ध अर्थशास्त्री, प्रशासक, नीति-निर्णायक एवं नियामक, संस्कृत तथा हिन्दी के विद्वान, एवं कुशल शैलीकार के सिद्धहस्त एवं योग्य संचालन में प्रदेश, विश्वविद्यालय तथा विभाग (एवं परिषद्) की दिन प्रतिदिन उन्नति होगी, ऐसा हमारा विश्वास है।

बहुत जानने के कारण मैं चुपचाप खड़ा होकर देख रहा था और मिस्त्री अपने काम में लगा था।

कुछ देर परिश्रम करने के बाद मिस्त्री ने सिर हिलाकर कहा—"इस समय ठीक नहीं हो सकता, सुबह देखूँगा।"

मुझे कुछ लिखने की जरूरत थी। अन्त में निराश होकर उसी मोमबत्ती के धीमे प्रकाश में मैं लिखने बैठा।

कहाँ तीस 'कैंडल पावर' और कहाँ एक टिमटिमाती मोमबत्ती। लिखते समय दुःख भी होता था, कष्ट भी, परेशानी भी। पर करता क्या, लाचार था। अपनी आदत से भी लाचार था। कभी अपने सामने के काम पर गुस्सा आता, कभी उस मिस्त्री पर, कभी मोमबत्ती पर।

पर उस समय मुझे बिजली की बत्ती पर बिलकुल गुस्सा न आया। कारण, मैं बिजली की रोशनी का गुलाम हो चुका था—और हूँ। मोमबत्ती स्वतंत्रता की प्रतिमूर्ति थी। पर गुलामी का सुख अनुभव करते-करते सुख की गुलामी करते-करते, मैं स्वतंत्रता का दुःख न सह सका, अतः दुःख से स्वतंत्रता भी न पा सका।

'स्विच' के दवाते ही जब कमरे में प्रकाश उमड़ पड़ता है, उसी समय हम गुलाम भी हो जाते हैं, बँध भी जाते हैं। गुलामी की जंजीरें सचमुच इन प्रकाश-किरणों की तरह ही सुनहरी, सुखद, और अदृश्य होती हैं। फिर भी हम उनमें बँध जाते हैं। हम सोचते तो हैं कि हम प्रकाशभंडार के स्वामी हैं—हमारी उँगली के इशारे पर प्रकाश और अँधेरा होता है, पर वास्तव में हम बिजली कंपनी के मज़दूरों और मिस्त्रियों के गुलाम हैं—गुलाम !

यही कारण है कि इनसे हमें सुख मालूम पड़ता है !

यदि हमें स्वयं बिजली की मशीन का प्रबन्ध आदि करना पड़ता तो हमें इतना सुख न मिलता। हम सुखी हैं, निश्चिन्त होने के कारण—निश्चिन्त हैं, गुलाम होने के कारण।

स्वतंत्रता में चिन्ता है, दुःख है, परिश्रम है, कष्ट है। स्वतंत्रता का अर्थ तंत्रहीनता नहीं।

जो लोग सुख की उम्मीद से स्वतंत्रता की उपासना करते हैं वे स्वतंत्रता के दुःखों का अनुभव कर बड़े ही दुःखी होते हैं। अंत में स्वतंत्रता-प्रेमी से स्वतंत्रताद्रोही हो जाते हैं।

आज कल जो धार्मिकता का अभाव है, उसका भी मेरी समझ में यही

कारण है। हमारे धर्म-उपदेशक यही बताते हैं कि धर्म से मनुष्य सुखी होता है। उद्देश्य सुख हुआ, धर्म केवल उपाय। सुखी होने के उद्देश्य से जो लोग धर्म का अवलंबन करते हैं उन्हें जब केवल दुःख ही दुःख मिलता है और देखते हैं कि जो लोग पाप करते हैं उन्हें बहुत सुख मिलता है, तो वे स्वभावतः धर्मोपदेशकों को मूर्ख या झूठा समझ लेते हैं और धर्म को तिलांजलि दे देते हैं।

अंग्रेजी में एक कहावत है—मुझे इस बात की बड़ी खुशी है कि यह हिन्दी में नहीं है—कि ईमानदारी सबसे अच्छी "पालिसी" है। पर बात बिलकुल गलत है। ईमानदारी और पालिसी में आग और पानी का सम्बन्ध है, दोनों का मेल असम्भव है।

मैंने तो धर्मात्माओं का जीवन साधारण अर्थ में सुखमय होते नहीं देखा। ईसामसीह से लेकर, गांधी तक सभी महापुरुषों का जीवन साधारण अर्थ में बड़ा ही कष्टमय रहा है। जो लोग धर्म को साधन और सुख को साध्य बतलाते हैं वे वास्तव में पाप की वृद्धि करते हैं। क्योंकि जब सुख को धर्म से अधिक महत्ता दी गई, तब यदि सुख-प्राप्ति के लिये कोई मनुष्य पाप का अवलम्बन कर अपने जीवन को सुखमय बनाने में सफल हो तो उसने धर्म छोड़कर अच्छा ही किया।

जब हमें बहुत शीघ्र किसी स्थान पर पहुँचने की उत्कंठा रहती है, तो हम चलते समय किसी भी कारण से रुकते नहीं, चाहे राह में कोई बहुत ही सुन्दर दृश्य दिखलाई पड़े या पैर में काँटे चुभें। पर यदि हम किसी स्थान पर इसलिए जाते हैं कि राह में सुन्दर-सुन्दर दृश्य दिखलाई पड़ेंगे और यात्रा आरम्भ करते ही काँटे चुभने लगें तो हमारा उस राह को छोड़ना स्वाभाविक ही नहीं न्यायसंगत भी होगा।

जिन्हें स्वतंत्रता से प्रेम है, उन्हें हमेशा इस बात को स्मरण रखना चाहिए कि स्वतंत्रता में सुख नहीं दुःख है, आनन्द नहीं क्लेश है। तभी उनका स्वतंत्रताप्रेम स्वतंत्रताप्राप्ति के बाद भी जीवित रह सकेगा।

स्वतंत्रता के लिए क्यों मरें ?

जिस तरह हमें भोजन की भूख लगती है उसी तरह हमारे अन्दर स्वतंत्रता के लिये भी एक भूख है। जैसे बहुत दिन उपवास करने से भूख मर जाती, उसी तरह गुलामी में रहते-रहते स्वतंत्रता की भूख मर जाती है। जैसे अरुचि बीमारी का लक्षण है और कमजोरी लाती है, जैसे जिस

मनुष्य को भूख एकदम न लगती हो वह खाना छोड़ देने से मर जायगा, उसी तरह जिसे स्वतंत्रता की भूख का अनुभव नहीं होता उसकी नैतिक मृत्यु हो जाती है। अतः स्वतंत्रता की क्षुधा को प्रज्वलित करना परमावश्यक है—चाहे स्वतंत्रता से हमें केवल दुःख की ही प्राप्ति क्यों न हो।

स्वतंत्रता सुख के लिए साधन नहीं, बल्कि स्वयं साध्य है। इसमें दुःख है, कठोर दुःख है। पर इससे क्या ?

दुःख के जीवन में ही जीवन का सुख है। सुख के जीवन में जीवन का सुख कहाँ ?

हम स्वतंत्र होंगे, सुखी नहीं। स्वतंत्रता सुख से बढ़कर है।

× × ×

यदि आप भी बिजली के आदी हों, और आपके घर की बत्तियाँ बुझ जायँ तो मोमबत्ती के प्रकाश में इस लेख को पढ़िएगा।

और मैं आशा करता हूँ कि यदि मेरे घर में फिर भी मोमबत्ती नज़र आवे तो मेरे कोई पड़ोसी मेरा ध्यान इस लेख की ओर दिलावेंगे।

++++++++++++++++

एषां भूतानां पृथिवी रसः, पृथिव्या आपो रसः।
अपामोषधयो रस, ओषधीनां पुरुषो रसः, पुरुषस्य वाग्रसो,
वाच ऋग्रस, ऋचः साम रसः, साम्न उद्गीथो रसः॥

इन समस्त प्राणियों का अस्तित्व-रस यथार्थ में पृथ्वी है (क्योंकि इसी पृथ्वी पर इनका जन्म, स्थिति एवं संहार होता है) पृथ्वी का सारा तत्व जल है, जल का रस औषधियाँ है, औषधियों का रस पुरुष है, पुरुष का रस वाक् है, वाक् का रस ऋक् है, ऋक् का रस साम है और साम का रस उद्गीथ है।

छान्दोग्योपनिषध ।।२।।

* * *

तीन प्रकार के व्यक्ति होते हैं—बादाम के समान, ऊपर से कठोर भीतर से मधुर एवं हितकारी। बेर के समान, ऊपर से कोमल भीतर से कठोर और व्यर्थ। अंगूर के समान, बाहर भीतर कोमल एवं रस से ओतप्रोत।—**सम्पादक**

* * *

घाटी की झील

डा० बालकृष्ण राव
कुलपति, आगरा विश्वविद्यालय

नदी की धारा होती,
पाती या बनाती राह
एक ओर बह जाती।
सिन्धु की लहर होती
गिर गिर कर बार बार,
सिर तो उठाती फिर
भले ही, जहाँ की तहाँ रह जाती।
पर यह नदी है न सागर है
धरती में गहरी गढ़ी एक बड़ी गागर है।
झील वो फैला हुआ
ठहरा हुआ, पानी है
जिसकी हर बूँद पर लिखी हुई
कहानी है।
उनकी जो पार हुए
उनकी जो डूब गये
और उनकी भी
जो बैठे किनारे पर ही ऊब गये।
सतह पर खेल है हवाओं का
वरना इस पानी में
बहाव कहाँ?



आगरा विश्वविद्यालय के कुलपति डा० बालकृष्ण राव, विभाग में परिषद् की बैठक में कविता पाठ कर रहे हैं। बायें से :—इन्द्रजीत कौर (भू० पू० मंत्री), वीणाकुमारी (मंत्री), कु० नीना कौल (उपसभापति), डा० राव तथा डा० रमेशकुमार शर्मा (सभापति)।

तप गये कितने ही किनारे के पत्थर
मगर इसमें जोश कहाँ,
ताव कहाँ ?
घिरी हुई घाटी के घेरे से न छूट सकी
बन्द मिले बाहर के दरवाजे
मन की मन में ही समा गई।
अक्स पड़ा पास के पहाड़ों का
घाटी की झील थी
और गहरा गई।

[यह कविता डा० राव ने विभाग में, परिषद् की बैठक में, सुनाई थी।]

+++++++++++

सर्प-रूप नहुष : व्यक्ति का वर्ण जन्मानुसार होता है या कर्मानुसार ?

धर्मराज युधिष्ठिर : जन्म से प्रत्येक व्यक्ति शूद्र होता है। उसकी मेधा के विशेष स्तर के अनुसार, वह यज्ञोपवीत द्वारा दूसरा जन्म (द्विज) प्राप्त करता है। सामान्यतः ५, ८ तथा १० वर्ष की आयु पर क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तीनों द्विज बनते हैं।

नहुष : यदि किसी का यज्ञोपवीत न किया जाय और आगे चल कर वह श्रेष्ठ कर्म करे तो क्या वह सवर्ण (द्विज) बन जायेगा ? अथवा, कोई द्विज आगे चलकर शूद्र के समान कर्म करे तो धर्म का क्या विधान होगा ?

धर्मराज : प्रथम व्यक्ति शूद्र से अपने कर्मानुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य बन जायगा और दूसरा व्यक्ति शूद्र ही माना जायेगा।—**महाभारत**

* * *

'साक्षरा' का उल्टा 'राक्षस' होता है।
'सरस' का उल्टा भी 'सरस' ही होता है। यही कवि और साक्षर का भेद है।

—एक संस्कृत कहावत

* * *

हिन्दी और बँगला के परसर्गों का व्यतिरेकात्मक अध्ययन

डा० सरोजिनी शर्मा
प्राध्यापक
केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा

वाक्य भाषा की मूल इकाई है। किसी भाषा के वाक्य या व्याकरणिक संरचना में दो तत्व परिलक्षित होते हैं जिन्हें अर्थ तत्व तथा संबंध तत्व कहा गया है। इन्हें ही--गतिशील और व्याकरणिक तत्वों के नाम से अभिहित किया गया है। संबंध तत्व वाक्य रचना और अर्थ तत्व में सहायक होते हैं। सामान्य रूप से ये तत्व तीन रूपों में परिलक्षित होते हैं—

1. संश्लिष्ट रूप।
2. विश्लिष्ट।
3. संश्लिष्ट-विश्लिष्ट।

आधुनिक भारतीय भाषाओं में अन्तिम तीसरे रूप में यह परिलक्षित होता है। हिन्दी में यह तत्व विश्लिष्टता प्रधान और बँगला में अपेक्षाकृत संश्लिष्ट रूप में है। इसका विवेचन आगे किया जाएगा।

हिन्दी में /-ने,/-को,/-से/ /-में/ /-पर/ जैसे पश्चाश्रयी रचनागत आने वाले संबंध तत्वों को परसर्ग कहा गया है। कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान आदि कारकों को क्रिया से संबंध बताने की क्षमता प्रदान करने के कारण विभक्ति और कारक चिह्न भी कहा गया है। जो संश्लिष्ट रूप धातु और मूल रूपों (प्रातिपदिकों) के पश्चात लगकर पदों की रचना करते हैं, वे विभक्तियाँ हैं। हिन्दी के परम्परागत व्याकरणाचार्यों ने /-ने/, /-को/, /-से/ आदि परसर्गों को भी विभक्तियाँ कहा है। इस दिशा में आधुनिक परम्परागत व्याकरणाचार्यों का भी ध्यान गया है कि कारक और विभक्ति की सीमा के बाहर भी एक ऐसा तत्व है जो विभिन्न व्याकरणिक तत्वों को स्पष्ट करता है। कामता

प्रसाद गुरु ने अपने व्याकरण में शब्दों के सब प्रकार के संबंधों की दृष्टि से कारकों के क्षेत्र को विस्तृत करने की बात कही है। इस प्रकार कारकों का क्षेत्र परसर्गों से सीमित है। वह क्रिया के साथ संज्ञा या सर्वनाम का जो संबंध रहता है उसे बताता है। संस्कृत में क्रिया के साथ संज्ञा—सर्वनाम और विशेषण – के संबंध को कारक कहते हैं। परन्तु किसी परसर्ग विशेष को किसी कारक चिह्न तक सीमित नहीं किया जा सकता और न ही ये विभक्तियों के अन्तर्गत आते हैं। विभक्तियों से पद का निर्माण होता है और परसर्गों से रचना का निर्माण होता है। विभिक्तियाँ प्रातिपदिक या धातु के साथ संयुक्त हो जाती हैं और परसर्ग संयुक्त नहीं होते। विभक्ति वह संश्लिष्ट तत्व है जो संज्ञा या सर्वनाम का क्रिया या अन्य शब्द के साथ संबंध स्थापित करता है ; यहाँ विभक्ति अर्थ तत्व को व्यवस्थित करके वाक्य में उसे प्रयोगार्ह बनाती है। लड़क् को वाक्य रूप में प्रयुक्त होने के लिए -आ, -ए, -ओं, -ई, -इयों, प्रत्ययों लगाकर लड़का, लड़के, लड़कों, लड़की, लड़कियों रूप बनाते हैं। परन्तु वाक्य में इन्हें पूर्णतः प्रयोग योग्य बनाने के लिए /ने/ /को/ /से/ आदि पर प्रत्ययों का प्रयोग भी आवश्यक है। इस प्रकार एक परसर्ग विशेष केवल एक कारक चिह्न और विभक्ति की सीमा में नहीं आ सकता। यह सही है कि एक परसर्ग से विभिन्न कारक संबंधों की सूचना मिलती है। जैसे—

/से/

↓	↓	↓
शीला से यह देखा न गया (कर्तृ विषयक)	किसी ने दीपक से कहा (कर्म विषयक) प्राणि-वाचक	वह राम से छीन ले गया (अपादान विषयक)

परसर्ग संज्ञा और क्रिया के संबंध को ही स्पष्ट नहीं करते, अपितु वाक्य में प्रयुक्त क्रियेतर अन्य शब्दों के पारस्परिक संबंधों को भी स्पष्ट करते हैं ; जैसे—"मैं मोहन के साथ वहाँ गया"—वाक्य में /के/ /मोहन/ (संज्ञा) और /साथ/ अव्यय पदों में संबंध स्थापित कर रहा है। वैसे ही—"श्याम का हाथ कट गया" वाक्य में /का/ परसर्ग श्याम और हाथ दो संज्ञा पदों के बीच संबंध प्रकट कर रहा है। परसर्ग समय तथा स्थान वाचक अव्ययों आदि। के साथ भी प्रयुक्त होते हैं ; जैसे—/कब से/, /यहाँ से/ /वहाँ से/, /जहाँ से/ इस प्रकार परसर्ग रूप विज्ञान (Morphology) का विषय न होकर वाक्य विज्ञान के क्षेत्र से संबंध रखता है।

हिन्दी की प्रकृति के अनुसार परसर्ग पद के पश्चात लगने वाला वह विश्लिष्ट तत्व है जो व्याकरणिक संबंध द्योतित करते हुए वाक्यांशीय रचना बनाता है। सामान्य रूप से हिन्दी में निम्नलिखित परसर्ग प्राप्त होते हैं—

/-ने/
/-को/
/-से/
/-में/
/-पर/
/-तक/
/-का/~/-के/~-की/

बँगला में भी परसर्गों का प्रयोग क्षेत्र लगभग हिन्दी के समान है, परन्तु यहाँ यह स्पष्ट करना अत्यन्त आवश्यक है कि बँगला में यह संबंध तत्व संश्लिष्ट रूप में प्राप्त होता है। हिन्दी की भाँति इसकी प्रकृति विश्लिष्टता की ओर नहीं है। बँगला की रूप रचना पर संस्कृत भाषा का अत्यधिक प्रभाव ही इसका कारण हो सकता है। जहाँ तक मेरी जानकारी की सीमा है, बँगला में इस संबंध तत्व को विभक्ति विचार के अन्तर्गत ही विवेचित किया जाता रहा है। यद्यपि इस दिशा में पर्याप्त मात्रा में विद्वानों का ध्यान जा चुका है और इस विषय पर कार्य आरंभ हुए हैं।

बँगला भाषा में परसर्ग वाक्य रचना का वह पश्चाश्रयी संबंध तत्व है जो पद के साथ आबद्ध हो वाक्यांश का निर्माण करता है। इस तरह वाक्य रचना की दृष्टि से बँगला भाषा में हिन्दी के ही समान संबंध तत्व प्राप्त होते हैं और वे वाक्यांशीय रचना का निर्माण करते हैं, जैसे—'राम' पद को लें—राम>रामेर बई (राम+एर बई—राम की किताव)। से रामके (राम+के) धरिते छे (वह राम को पकड़ता है) इसी प्रकार 'कुकुर' (कुत्ता) पद को लेकर कुकूर>कुकूरगुलि (कुत्तों, कुत्ते), कुकूरगुलि के (कुकूरगुलि+के—कुत्तों को) यह स्वरूप स्पष्ट होता है।

इस तरह बँगला वाक्य संरचना में यह संबंध तत्व पश्चाश्रयी रचना का चरम प्रत्यय रूप ही है जो वाक्यांशीय रचना करता है। संस्कृत के प्रभाव के कारण इसका रूपगत स्वरूप हिन्दी से भिन्न विभक्ति के समान परिलक्षित होता है परन्तु प्रस्तुत लेख में हिन्दी भाषा से तुलनात्मक या व्यतिरेकी स्वरूप

की दृष्टि से तथा अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से बँगला के इस सम्बन्ध तत्व को परसर्गों के अन्तर्गत ही लिया जायेगा।

आरंभ में ही यह संकेत दिया जा चुका है कि हिन्दी तथा बँगला दोनों भाषाओं में परसर्गों का रूप संश्लिष्ट-विश्लिष्ट रूप ही है परन्तु हिन्दी में यह विश्लिष्ट एव बंगला में अपेक्षाकृत संश्लिष्ट रूप में प्राप्त होता है। हिन्दी में सर्वनाम रूपों में परसर्ग रूपान्तरित हो संश्लिष्ट होते हैं। बँगला में हिन्दी /से/ के समकक्ष /-दिया/~/-द्वारा/ तथा /-हइत/~/-थेके। जैसे विश्लिष्ट रूपों को छोड़ अन्य रूप संश्लिष्ट ही रहते हैं, जैसे—

बँगला	हिन्दी
1. अन्धेके कापड़ दाओ (अन्धे+के)	अन्धे को कपड़ा दो।
2. आमि तुमादिगे **के** दीब (तुमादिगे+के)	मैं तुम लोगों को दूँगा।
3. घ**रे** केह नाइ (घर+ए)	घर में कोई नहीं है।
4. वृक्**षे** फल आछे (वृक्ष+ए)	वृक्ष पर फल हैं।
5. गा**धार** बुद्धि (गाधा+र)	गधे की बुद्धि।
6. से पश्चिमोत्त**रे** गेइल (पश्चिमोत्तर+ए)	वह पश्चिमोत्तर को गया।
7. आज संध्याय आमार बाड़ी आसुन /संध्या+य/	आज शाम को मेरे घर आइए।
8. बई **थेके** के पाता छिँड़िल ?	किताब से पृष्ठ किसने फाड़ा ?
9. तोमा **द्वारा** होइबे ना।	तुमसे नहीं होगा।
10. बाड़ी **हइते** चलिया गेल।	घर से चला गया।

प्रयोग की दृष्टि से बँगला में भी ये हिन्दी के समान कारक संबंधों तक सीमित नहीं किए जा सकते। अन्य कारकेतर संबंधों को भी द्योतित करते हैं—

/ दिया / ~ / द्वारा / (हिन्दी / से /)

↓	↓	↓
शीला द्वारा एटा देखा गेलोना (शीला से यह देखा न गया)	आमि हाथ दिया काज करि (मैं हाथ से काम करता हूँ)	व्यवस्था दिया मंजूर शांत होइल (व्यवस्था से मज़दूर शांत हुए)
कर्तृ विषयक	करण विषयक	

बंगला में भी हिन्दी के समान परसर्ग वाक्य में क्रियेतर शब्दों के संबंधों को भी स्पष्ट करते हैं तथा समय एवं स्थान वाचक अव्ययों के साथ भी इनका प्रयोग होता है ; जैसे—/तरवाँ हइते/ (वहाँ से), /कोथाय/ (कहाँ, कहाँ पर) /एखान थेके/ (यहाँ से) आदि।

बंगला में हिन्दी के समान रूपान्तरणशील परसर्गों की प्रकृति नहीं है। हिन्दी में रूपांतरण, शील परसर्ग लिंग तथा वचन से प्रभावित हैं और मूल तथा तिर्यक रूपों के अनुसार इनके रूप प्रयुक्त होते हैं। हिन्दी में ये कारक के प्रत्यय रूप से प्रयुक्त होते हैं।

बँगला में निम्नलिखित परसर्ग प्राप्त होते हैं—

बँगला	हिन्दी
/-ϕ/	/ϕ/ /-ने/
/-के/~/-रे/~/-य/	/-को/ /-के लिए /—
/-द्वारा/~/दिया/~/-कर्तृक /-हइते/~/-थेके/	/-से/
/-ए/~/-य/~/-ते/~एते	/-में/ /-पर/
/-र/~/-एर/~/आर/	/-का/~/-के/~/-की/
/-पर्यन्तु/(पर्जन्तु)	/-तक/

प्रस्तुत लेख में केवल हिन्दी के /-ने/ तथा /-को/ परसर्गों के समान बँगला के /-ϕ/ तथा /-के/ परसर्गों का ही व्यतिरेकी स्वरूप प्रस्तुत करूँगी।

जब बिना किसी परसर्ग के कोई पद वाक्य में प्रयोग करने योग्य बन जाता है उस स्थिति को भाषावैज्ञानिकों ने शून्य परसर्ग /-ϕ/ माना है। हिन्दी में इसकी विभिन्न स्थितियाँ हैं। बँगला भाषा की प्रकृति में भी हिन्दी के समान शून्य परसर्ग की रचनाएँ हैं। इसके अतिरिक्त बँगला में हिन्दी के समान /-ने/ परसर्ग भी नहीं है अर्थात् बँगला में कर्त्ता परसर्ग विहीन होता है। इसलिए बँगला परसर्ग में हिन्दी /-ने/ तथ /-ϕ/ ही प्रयुक्त होता है। हिन्दी /-ने/ अपने पूर्ववर्ती पद (भूत कालकि सकर्मक के कृदन्त से) का क्रिया से कर्तृपरक सम्बन्ध स्थापित करता है जैसे—

	बँगला
1. पिताजी ने तुम्हें बुलाया।	बाबा तोमाके डाकियाछेन।
2. तुम लोगों ने रोटी खाई।	तोमरा रूटि खाइयाछ।

3. मैंने रोटी खाई है।	आमि रूटि खाइलाम।
4. तुमने रोटी खाई है।	तुमि रूटि खाइयाछ।
6. उन लोगों ने रोटी खाई है।	तहारा रूटि खाइयाछे।
7. हमने रोटी खाई है।	आमरा रूटि खाइयाछि।

बँगला के साथ तुलना करने पर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि बँगला-भाषियों को हिन्दी सीखने की दृष्टि से हिन्दी /-ने/ परसर्ग दो तरह की कठिनाइयाँ उपस्थित करता है—

क्योंकि बँगला वाक्य रचना में हिन्दी के समान शून्य परसर्ग भी है और हिन्दी का /-ने/ परसर्ग भी वहाँ शून्य परसर्गीय रचना में आ जाता है। इसलिए बँगलाभाषी या तो /-ने/ का अनावश्यक आगम कर देता है या उसका लोप कर देता है।

दूसरी बात यह है कि स्वयं हिन्दी में /-ने/ परसर्ग हमेशा ही भूतकालिक सकर्मक क्रियाओं में लगे यह आवश्यक नहीं है। कुछ विशिष्ट क्रियाओं के साथ /-ने/ नहीं लगता। पाना क्रिया के साथ कभी ने का प्रयोग होता है और कभी नहीं होता। ऐसी स्थिति में बँगलाभाषी का हिन्दी /-ने/ परसर्ग के प्रयोग में भूल करना स्वाभाविक है।

बँगला /-के/~/रे/~/-य/~/-ए/ (हिन्दी /-को/)

बँगला /-के/ परसर्ग हिन्दी /-को/ के समकक्ष है परन्तु व्यतिरेकी दृष्टि से देखा जाये ये हिन्दी /-को/ तथा बँगला /-के/ की स्थितियों में पर्याप्त वैषम्य भी है। सामान्य रूप से बँगला /-के/ कर्म तथा सम्प्रदान का एक विभक्ति प्रत्यय रूप है। बँगला /-के/ के विविधि प्रयोगों का स्वरूप इस प्रकार है—

संज्ञापदों के साथ

बँगला	बालक के	राम के	पुत्र के
हिन्दी	लड़के को	रामको	पुत्र को

सर्वनाम पदों के साथ

बँगला	आमाके	ताहाके	कहाके	जहाके	इहाके	उहाके
हिन्दी	मुझको	उसको	किसको	जिसको	इसको	उसको

संज्ञावत प्रयुक्त विशेषण पदों के साथ

बँगला	अनाथके	पीडितके	सुखीके	सुन्दरके
हिन्दी	अनाथ को	पीड़ित को	सुखी को	सुन्दरको

क्रियार्थक संज्ञापदों के साथ

बँगला	नाचवार जन्य	खाबार जन्य
हिन्दी	नाचने को	खाने को

बँगला में विभिन्न पदों के साथ प्रयुक्त होकर यह परसर्ग विभिन्न प्रकार के अर्थ द्योतित करने वाली रचनाएँ बनाता है। कर्म विषयक तथा कर्तृ विषयक प्रयोगों में बँगला /-के/ परसर्ग का साम्य हिन्दी से है परन्तु अनुभूति जहाँ होगी वहाँ बँगला में हिन्दी के समान /-को/ की तरह /-के/ का प्रयोग नहीं होता। निम्नलिखित वाक्यों से इसके विभिन्न प्रयोग स्पष्ट होते हैं—

1. चीन प्रस्तावगुलिके मानिबे ना।
   (चीन प्रस्तावों को मानेगा नहीं।)
2. बरनॉल जालाके शांत कर दे।
   (बरनॉल जलन को शांत करता है)
3. इन्सपैक्टर के मामलार पूछताछ जेरा नीते होल
   (इन्सपैक्टर को मामले की छानबीन करनी पड़ी)
4. मोहन के मशीने ऊपर काज करते होल
   (मोहन को मशीन पर काम करना होगा)
5. प्रधानमंत्रीर आशा आछे।
   (प्रधानमंत्री को आशा है)
   (चीनेर उचित)
6. चीन को चाहिए
7. रामेर ज्वर आछे
   (राम को बुखार है।)

हिन्दी में प्रयोजन विषयक, समय विषयक, क्रिया सामीप्य विषयक, (क्रिया या व्यापार का पूर्वाभास देने के लिए) दिशा विषयक स्थिति में /-को/ का प्रयोग होता है। ऐसी स्थितियों में भी बँगला /-के/ हिन्दी /-को/ से किंचित भिन्न रूप में प्रयुक्त होता है तथा वहाँ /ए~/-त/~/-य/~/-रे/-का प्रयोग होता है।

1. से तहाके मृत स्वीकार करते राजी छिलोना। (वह उसे मृत मानने को तैयार नहीं था।)
2. रात्रे सेवन करून (रात्रि को सेवन करे)

3. के जाने कालके ही होवे (कौन जानें कल को क्या हो)
4. आज संध्याय अमार बाड़ी आशुन (आज शाम को मेरे घर आइए)
5. काज शेष होते चलिल (काम खत्म होने को है)
6. दूटा बाजते चलिल। (दो बजने को है)
7. से पश्चिमोत्तरे गइल। (वह पश्चिमोत्तर को गया)
8. से आज सकाले दिल्लीते गेलो। (वह आज प्रातः दिल्ली को चल दिया)

अन्य प्रयोगों की दृष्टि से निम्नलिखित वाक्यों पर विचार करना उचित होगा—

9. अन्धेके कापड़ दाउ (अंधे को कपड़ा दो)
10. आमि चाकरके टाका दिया छि। (मैंने नौकर को रुपया दिया)
11. से माँके प्रणामकरे। (वह माँ को प्रणाम करता है)
12. माता शिशुके चन्द्र दिखाइते छेन। (माता शिशु को चन्द्रमा दिखाती है)
13. आमि मोहनको टाका दियाछि। (मैंने मोहन को रुपया दिया)
14. धीरेन्द्र सतीशके इहा वोलिल। (धीरेन्द्र सतीश से यह बोला)
15. कुकूरगुलि के ताड़ाउ। (कुत्तों को भगाओ)
16. बालककेर डाकिया वल। (बालकों को बुलाकर कहो)
17. कॉगालिदेर खाउयाइले पुण्य हय (कँगालों को खिलाने से पुण्य होता है)
18. छलोर डाकिया काज कराउ। (लड़के को बुलाकर काम कराओ)
19. कहाके वइ दिब ? (किताब किसे दूँ ?)
20. गाड़ीवानके एकटी टाका दियाछि। (गाड़ीवान को एक रुपया दिया)
21. आमादिगेके कापड़ दाड़ (हम लोगों को कपड़ा दो)
22. ऊहादिगेके बाड़ी दिब ? (उन लोगों को मकान दोगे)
23. केउ श्यामके वोललो (किसी ने श्याम से कहा)
24. से अमाके जिज्ञासा करलो (उसने मुझसे पूछा)

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि बँगला /-के / परसर्ग हिन्दी

/-को / से जहाँ पर्याप्त साम्य रखता है वहाँ कुछ स्थितियों में वैषम्य भी रखता है। व्यतिरेकी दृष्टि से ये स्थितियाँ इस प्रकार हैं—

1. बँगला में हिन्दी /-को / के समान आजकल परसों आदि अव्ययों में प्रायः /-के / नहीं लगता परन्तु कहीं-कहीं संदर्भ विशेष को सूचित करने के लिए इसका प्रयोग हिन्दी /-को / की भाँति होता है (वाक्य 3)।

2. बँगला में रात, शाम, दोपहर, आदि संज्ञा पदों के साथ /-के / का ऐच्छिक प्रयोग हिन्दी /-को / की भाँति नहीं है। ऐसी स्थिति में वहाँ के /-के/ के स्थान पर।-य /~/-ए / का प्रयोग होता है (वाक्य 2, 4)। यही स्थिति स्थानवाचक, समयविषयक, (विशिष्ट समय या क्रिया व्यापार) क्रिया सामीप्य विषयक (क्रिया व्यापार का पूर्वाभास) तथा दिशा विषयक स्थिति में है। वाक्य 5-8 इस दृष्टि से दृष्टव्य हैं।

3. बँगला में /-के/ के स्थान पर /-रे/ का प्रयोग भी कभी-कभी होता है (वाक्य 16-18)

4. बँगला और हिन्दी में क्रमशः /-के/ तथा /-को/ का ऐच्छिक प्रयोग कुछ परिस्थितियों में समान रूप से परिलक्षित होता है परन्तु बँगला में सम्प्रदान विषयक स्थिति /-के/ का प्रयोग निश्चित होता है। वाक्य 19-23 दृष्टव्य हैं।

5. पूछना, कहना बोलना, इन्कार करना, घृणा करना आदि क्रियाओं के आने पर बँगला में 'के' का प्रयोग हिन्दी से भिन्न है। हिन्दी में इस स्थिति में /-से/ तथा बँगला में /-के/ का प्रयोग होता है। इस तरह बँगालीभाषी को हिन्दी /-को/ के प्रयोग में भ्रम हो जाना स्वाभाविक है तथा वह /-को/ के स्थान पर /-से/ का प्रयोग या /-से/ के स्थान पर /-को/ का प्रयोग कर देता है (वाक्य 23, 24)

6. क्रियार्थक संज्ञा पदों के साथ बँगला में /-के/ का प्रयोग नहीं होगा। बँगला भाषा में क्रिया का प्रयोग अन्विति की दृष्टि से अन्य व्याकरणिक कोटियों से ही बँधा है और कहीं-कहीं तो क्रिया को छोड़ भी दिया जाता है, अतः ऐसी स्थिति में /-के लिए/ के अर्थ में बँगला में जन्य का प्रयोग होता है, जैसे 'नाचवार जन्य", "खाबार जन्य"।

प्रस्तुत लेख में बँगला वाक्य संरचना तथा हिन्दी वाक्य संरचना में हिन्दी के परसर्गों के समकक्ष बँगला भाषा के वाक्यांशीय रचनाओं में आने वाले चरम प्रत्यय रूपों के व्यतिरेकी स्वरूप का एक सामान्य सा रूप प्रस्तुत

करने का प्रयास किया गया है। बँगला भाषा में वाक्य का यह संबंधतत्व परसर्ग माना जाय या नहीं, इस बात पर मैंने बल नहीं दिया है क्योंकि कुछ भाषाविज्ञान के विद्वानों (जिनमें स्वयं बँगलाभाषी भी सम्मिलित हैं) से परामर्श लेने पर मुझे प्रतीत हुआ कि बँगला रचना का वाक्य विज्ञान का यह संबंध तत्व परसर्ग कहा जाय, इसमें उनकी एक राय नहीं है।

जो भी हो मैंने यह सामान्य सा विवरण केवल दो संबंधतत्वों (परसर्गों) का इस दृष्टिकोण से सामने रखा है जिससे यह स्पष्ट हो जाय कि बँगला-भाषी हिन्दी सीखते समय हिन्दी परसर्गों में किस प्रकार की भूलें करता है। इसीलिए प्रत्येक परसर्ग के साथ उन पाठ्य विन्दुओं की ओर मैंने संकेत किया है।

++++++++++++++++

"रसोई के विप्र, कसाई के कूकुर, दुश्चरित्र स्त्री, रिश्वती अफसर ; इनके पेट और जेब कभी खाली नहीं रहते।"—**सम्पादक**

*　　*　　*

"कुछ लोग बुरे काम के लिए अच्छे होते हैं और कुछ अच्छे काम के लिए बुरे। कुछ ऐसे भी होते हैं जो बुरे काम के लिए बुरे होते हैं परन्तु अच्छे काम के लिए अच्छे लोग वड़ी कठिनाई से मिलते हैं।"—**सम्पादक**

*　　*　　*

पारस पत्थर के स्पर्श से लोहे की तलवार सोने की हो जाती है और यद्यपि उसकी शक्ल-सूरत देखने में वैसी ही रहती है परन्तु लोहे की तलवार की भाँति वह औरों को काटती नहीं, उन्हें कष्ट नहीं पहुँचाती। उसी प्रकार ईश्वर के चरण-स्पर्श से जिसका हृदय पवित्र हो जाता है उसकी शक्ल-सूरत तो वैसी ही रहती है किन्तु वह दूसरों को कष्ट और पीड़ा नहीं पहुँचाता—पहुँचा ही नहीं सकता।

—**परमहंस रामकृष्णदेव**

*　　*　　*

होली

स्व० नज़ीर अकबराबादी

जब फागुन रंग झमकते हों तब देख बहारें होली की
और दफ़ के शोर खड़कते हों तब देख बहारें होली की
परियों के रंग दमकते हों तब देख बहारें होली की
खम, शीशे जाम छलकते हों तब देख बहारें होली की
महबूब नशे में छकते हों, तब देख बहारें होली की ॥

हो नाच रंगीली परियों का बैठे हो गुलछे रंग भरे
कुछ भीगी तानें होली की कुछ नाज़-ओ-अदा के ढंगभरे
दिल भोले देख बहारों को और कानों में आहंग भरे
कुछ तबले खटकें रंग भरे, कुछ ऐश के दम मुंह-जंग भरे
कुछ घुंघरू ताल छनकते हों, तब देख बहारें होली की ॥

सामान जहाँ तक होता है इस इशरत के मतलूबों का
वो सब सामान मुहय्या हो और बाग खिला हो खूबों का
हर आन शराबें ढलती हों और ठठ हो रंग के डूबों का
इस ऐश-मजे के आलम में इक गोल खड़ा महबूबों का
कपड़ों पर रंग छिड़कते हों तब देख बहारें होली की ॥

गुलजार खिले हों परियों के और मजलिस की तय्यारी हो
कपड़ों पर रंग के छीटों से खुशरंग अजब गुलकारी हो
मुंह लाल, गुलाबी आँखें हों और हाथों में पिचकारी हो
इस रंग भरी पिचकारी को, अंगिया पर तककर मारी हो
सीनों से रंग ढलकते हों, तब देख बहारें होली की ॥

और एक तरफ़ दिल लेने को महबूब भवय्यों के लड़के
हर आन कड़ी गत भरते हों कुछ घट-घट के कुछ बढ़-बढ़ के
कुछ नाज़ बतावें लड़-लड़के कुछ होली गावें अड़-अड़ के
कुछ लचके शोख कमर पतली, कुछ हाथ चले, कुछ तन फड़के
कुछ के फिर नैन भटकते हों, तब देख बहारें होली की ॥

ये धूम मची हो होली की और ऐश मजे के झक्कड़ हो
माजून शरावें, नाच मजा और ठिकिया, सुलफ़ा कक्कड़ हो
लड़-भिड़के 'नजीर' फिर निकला हो कीचड़ में लत्थड़-पत्थड़ हो
जब ऐसे ऐश झमकते हों, तब देख बहारें होली की ॥

++++++++++++++++

बंगाल के राजा के दरवार में एक वार एक ऐसा व्यक्ति आया जो अनेक भाषाएँ समान अधिकार से बोलता था। वह कहाँ का है, उसकी मातृभाषा क्या है, यह वह बताता नहीं था और राजा सहित सव सभासद यह जानने को उत्सुक थे। कुछ दिन पश्चात् राजा ने अपने प्रिय विदूषक-सभासद गोपाल भाँड़ को बुलाया और उसे यह पता लगाने का काम सौंप दिया। उसी दिन गोपाल भाँड़ ने सीढ़ियाँ उतरते समय उस भाषा-विद् को धक्का देकर गिरा दिया, और अनायास उसके मुँह से एक भाषा में गाली निकल गई, जिसे गोपाल भाँड़ ने उसकी मातृभाषा घोषित कर दिया। उसे मानना पड़ा। क्रोध, भावातिरेक और मुसीवत में आदमी की असलियत सामने आ जाती है।

* * *

भोजन के वाद जो थोड़ी देर विश्राम करता है, झगड़ा हो जाने पर पहिला हाथ मारकर तुरन्त भाग जाता है, कभी वचन नहीं देता, मित्र को कर्ज़ा नहीं देता, प्रातः उठते ही ताम्रपात्र से जल पीता है, हाथ में लाठी और सिर पर पगड़ी रखता है, स्त्री को भेद और पुत्र को सारा धन नहीं देता, वह व्यक्ति सुख से जीता है और चैन से मरता है।

—**सम्पादक**

* * *

"कश्मीरी भाषा के शब्द वातायन से"

त्रिलोकीनाथ गंजू

एच० एच०, एच० एस०, बी० एड, एम० ए०

प्रवक्ता हिन्दी विभाग

कश्मीर विश्वविद्यालय

"कश्मीरी भाषा का शब्द वातायन" वितस्ता पत्रिका का एक स्थायी स्तंभ है, जिसमें यह देखने का प्रयास किया जा रहा है कि कश्मीरी भाषा के शब्द-शास्त्र की यथार्थ स्थिति क्या है। वास्तव में कश्मीरी भाषा के प्रति अधिकांशतः भारतीय भाषा-शास्त्रियों की ओर से अनिच्छा और उपेक्षा ही रही है। जो कुछ सामग्री उन्हें सर ग्रियर्सन के द्वारा उपलब्ध हो सकी, उसी को इत्यलम् मानकर संतोष किया गया परं वास्तविकता कुछ और ही है। सर ग्रियर्सन कश्मीरी को पैशाची और दरद के सन्धि स्थल पर बिठाकर अपने और भावी पीढ़ी के लिए इस कदर विभ्रान्ति पैदा कर गये हैं कि भाषा का तात्विक स्वरूप ही विभ्रान्त हो गया और एक उपेक्षा ने जन्म ले लिया। परं आश्चर्य यह है कि सर ग्रियर्सन स्वयं न तो कश्मीरी के ही न (शिणा) श्रिण्या-विभाषा के ही इतने विद्वान थे कि भाषात्मक सूक्ष्म तंतुओं को जान सकते। जैसा कि वे स्वयं स्वीकाराते[1] हैं श्रिण्या (शिणा) भाषा की भाषात्मक सामग्री बिड्डुलफ[2] तथा लिचनर[3] पर निर्भर है। यदि ग्रियर्सन को ग्राहम बेली पत्र द्वारा[4] यह सूचित नहीं

---

१. ग्रियर्सन : भाषा सर्वेक्षण भाग ८, विभाग २, पृ० १५४।

२. बिड्डुलफ : डैलेक्टस ऑफ ट्राइवस् ऑफ हिन्दूकुश रा० ए० सो० बं०।

३. लिचनर : लैंग्वेजज़ एण्ड रेसिस् ऑफ दरदिस्तान।

४. ग्रियर्सन : भाषा सर्वेक्षण : भाग ८, वि० २, पृ० १५० फुटनोट।

करते कि यह /शीना/ नहीं अपितु /शिणा/ है तो संभवतः वह शीना ही लिखते रहते। परं सबसे बड़ा आश्चर्य यह है कि ग्रियर्सन के उच्चारण को शुद्ध करनेवाला ग्राहम बेली स्वयं श्रिण्या की ध्वनि को पकड़ नहीं सका।

इसी प्रकार जो खूबी ग्रियर्सन ने श्रिण्या भाषा के प्रति अभिव्यक्त की है वही हाल उनका कश्मीरी भाषा के प्रति भी रहा है। मेरे पितामह के ज्येष्ठ भाई स्व० महामहोपाध्याय मकुन्दराम शास्त्री को कश्मीर-राज्य ने ग्रियर्सन के साथ संलग्न रखा था। वास्तव में ग्रियर्सन जो चाहते थे उनसे लिखाकर उसका अंग्रेजी लिप्यान्तर करते थे। स्व० महामहोपाध्याय का कहना था कि **"ग्रियर्सन तो कश्मीर भाषा का प्राथमिक ज्ञान भी नहीं रखता था।"** जहाँ कहीं ग्रियर्सन ने शब्दकोश को लेकर स्वयं कश्मीरी वाक्य जोड़ने का प्रयत्न किया वहाँ कितनी विसंगतियाँ हुईं इसका प्रमाण पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ।

ग्रियर्सन[1] द्वारा गठित कश्मीरी :—/चयोन नाव क्याह छह ?/ हिन्दी /तुम्हारा नाम क्या है ?/ ग्रियर्सन ने इस वाक्य का अनुवाद हिन्दी शैली के अनुकूल किया है अर्थात् प्रथम कर्ता, फिर कर्म, और अन्त में क्रिया। जबकि कश्मीरी भाषा में प्रथम कर्ता, फिर क्रिया, और अन्त में कर्म आता है। उस पर भी वाक्य प्रश्नवाचक है। जबकि शुद्ध और ठेठ कश्मीरी वाक्य होना चाहिए था :—कश्म० /चे क्याः छुय् नाव ?/ हि० /तुम्हारा क्या है नाम ?/

यही दुर्घटना श्रिण्या भाषा के ध्वनि के साथ हुई है :—ग्रियर्सन द्वारा प्रस्तुत श्रिण्या :—श्रिण्य>/तेइ नोम जैक हनो ?/ हि० /तुम्हारा नाम क्या है ?/ जब कि शुद्ध श्रिण्या भाषा में इसका गठन एवं ध्वनि इस प्रकार से होनी चाहिए थी :—शुद्ध श्रिण्या[2]>/थेंइ जेंक नोम् हनं ?/ हि० /तुम्हारा नाम क्या है ?

प्रस्तुत शब्द-वातायन का यह छटवां दर्पण है। इसमें प्रथमतः संज्ञा-शब्द और तदनन्तर दस धातु-संपन्न क्रियाएँ हैं।

संज्ञापरक :

कश्मीरी	**संस्कृत**	**हिन्दी**
रछिज़ैन	रक्षिजनः	रक्षा
रंग	रङ्ग	रंग

---

१. ग्रियर्सन : भाषा सर्वेक्षण भाग ८, वि० २, पृ० २६ (दारदिक)
२. ग्रियर्सन : भाषा सर्वेक्षण भाग ८, वि० २, पृ० २६ (दारदिक)

लकुट	लट् ?	बच्चा
लूश	लेश	तिनका
चोंट	चर्पटी	रोटी
ग्यूर	घूर्णि	चक्कर (मूर्छा)
गोन[1]	घन	घना
गरम	घर्म	गर्म
चामन्	चाम्यम्	पनीर
कोंकुर्	कुक्कुटः	मुर्गा

धातु-संपन्न क्रियाएँ—का काशकृत्स्न-व्याकरण से :—

कश्म०/लोंच़/ ; मूल धातु—"लुञ्च अपनयने अल्पत्वेच" ।

(१) /लुञ्चति/ ; हिन्दी :—लुञ्च धातु अपनयन एवं हल्केपन के प्रति है—/हल्की/ ।

(२) कश्म० /लछ़/ ; मूलधातु :—"लछि लक्षणे", /ललति/ हि० :—लछि धातु लक्षण, चिह्न, कूड़ा कर्कट के प्रति है—/धूल/ ।

(३) कश्म० /ग्रेंट/ ; मूल धातु :—"घरट्टहिंसायाम्", /घरट्टति/ ; हि० :—घरट्ट हिंसा के प्रति है अथवा कूटने के प्रति—/चक्की/ ।

(४) कश्म० /रटुन्/ ; मूल धातु :—"रट्ट ग्रहणे", /रट्टति/ हि० :—रट्ट धातु ग्रहण, पकड़ने के प्रति है—/पकड़ना/ ।

(५) कश्म० /राण्ड/ ; मूल धातु :—"रण्डि व्यभिचारे", /रण्डति/ ; हि० :—रण्डि धातु व्यभिचार या गुण्डेपन के प्रति है—/रण्डवा/ ।

(६) कश्म० /डोडि/ ; मूलधातु :—"ढढि अन्वेषणे", /ढुण्ढुति/ हि० :—ढुढि धातु खोज खोजाने के प्रति है—/ढूँढ़ना/ ।

(७) कश्म० /ज़ाफ/ ; मूलधातु :—"जाप आलस्ये", /जापति/ हि० :—जाप धातु आलस्य, सुस्ती आदि के प्रति है—/सुस्ती/ ।

(८) कश्म० /जुप/ मूलधातु :—"जुप आलस्ये", /जूपति/ ; हि० :—जुप धातु आलस्य और सीधेपन के प्रति है—/बावला/ ।

(९) कश्म० /वूफ/ ; मूलधातु :—"वफ गतौ", /वफति/ ; हि० :—वफ धातु जाने, उडने के प्रति है—/उड़ना/ ।

(१०) कश्म० /लर्ब/ ; मूलधातु :—"लब अवरोहने", /लम्बति/ ; हि०—लब धातु चढ़ने चुनने आदि के प्रति है—/दीवार ।

++++++++++++++++

---

१. डॉ तेस्सितोरी : पुरानी राजस्थानी /घणउ/, पृ० ६८ ।

मुखौटे

वीणाकुमारी एम० ए० (उत्तरार्द्ध)
मंत्री, हिन्दी परिषद्

कितने ही मुखौटे ओढ़ कर
दिन रात
अभिनय करके भी
मेरा प्रत्येक मुखौटा
उतर कर
मेरी ओर
दयनीय बना देख लिया करता है।
मानो कहता है कि…
कितना सफल अभिनय था।
अपनी ही उदासियों को
अपने हाथों क़त्ल किया
और अपनी ख़ुशियों को
सदा के लिए डुबो दिया।
मौत माँग माँग कर—
ईश्वर से—
तड़पन भरी ज़िन्दगी की
दुआ पा ली।
आँखों ही आँखों से
ज़हर पीना सीख कर
अमृत का स्वाद खो दिया।

कुछ का कुछ सोचा था
मुखौटों में छिपे छिपे
अपना चेहरा भी
नया मुखौटा बना लिया ।
और अब
सब मुखोटों में चारों ओर
कहीं उस मुखौटे को खोज रहे हैं
जो अपना चेहरा था ।

++++++++++++++++++

तीन सुख

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम् ।
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम् ॥ गीता, १८/३७

(वह सुख प्रथम साधन के आरम्भकाल में यद्यपि विष के सदृश भासता है परन्तु परिणाम में अमृत के तुल्य है, इसलिए जो भगवत् विषयक बुद्धि के प्रसाद से उत्पन्न हुआ सुख है, वह **सात्विक** कहा गया है ।)

* * *

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम् ।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम् ॥ गीता, १८/३८

(जो सुख विषय और इन्द्रियों के संयोग से होता है, वह यद्यपि भोग-काल में अमृत के सदृश भासता है, परन्तु परिणाम में विष के सदृश है, इसलिए वह सुख **राजस** कहा गया है ।)

* * *

यदग्रे चानुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः ।
निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम् ॥ गीता, १८/३९

(तथा जो सुख भोगकाल में और परिणाम में भी आत्मा को मोहनेवाला है वह निद्रा, आलस्य और प्रमाद से उत्पन्न हुआ सुख **तामस** कहा गया है ।)

* * *

"तिलेल-गुरेसी श्रिण्या-भाषा में क्रिया-पद"

मसूदुलहसन सामूं
एम० ए० (उत्तरार्द्ध) फारसी विभाग
कश्मीर विश्वविद्यालय

जार्ज ग्रियर्सन श्रिण्या विभाषा को दारदिक भाषा कहते हैं और इस विभाषा को अन्य दरद विभाषाओं से अधिक संपन्न घोषित करते हैं। महाभारत[1] में सर्वप्रथम दरद शब्द का उल्लेख मिलता है। भारतीय पुराणों में दरद-पल्लव आदि नाम आते हैं। इतिहासकार कल्हण ने कई बार राजतरंगिणी[2] में दरदों का उल्लेख किया है। दरद की मूल अर्थवत्ता संस्कृत जबान की है। जिसे पहाड़ कहते हैं। परन्तु यहाँ हमारा भूगोल से नहीं बल्कि भाषात्मक सामग्री से सम्बन्ध है इसलिए मैं दरद भू-भाग की भाषाओं के बारे में ही अधिक कहना चाहता हूँ। दरद प्रदेश में बोली जाने वाली भाषा के प्रमुख पांच विभाग हैं। जो वास्तव में श्रिण्या के ही रूप हैं लेकिन थोड़ा ध्वन्यात्मकता का फ़र्क़ जरूर है। (१) गिलगती ; (२) अस्तोरी ; (३) चिलासी ; (४) द्रासी ; (५) तिलेलगुरेसी ; ये हैं श्रिण्या के विभिन्न रूप।

गिलगित की श्रिण्या-भाषा की ध्वन्यात्मकता पर काफिरी विभाषाओं का इस कदर असर पड़ा है कि उसका अपना हुलिया ही बिगड़ गया है। श्रिण्या इलाके के बीच के तबक़े में अस्तोरी और चिलासी का स्थान आता है। इस जबान के बारे में यह कहा जा सकता है कि इसकी ध्वन्यात्मकता अभी भी सुरक्षित है। द्रासी श्रिण्या पर बलती भाषा का असर इस कदर छा गया है कि यह बलती और श्रिण्या का एक नया रूप है,

---

१. महाभारत : धौम्य-वर्णन।
२. कल्हण : राजतरंगिणी १/३१२ ; ७/११७१ ; ७/११७४ ; ७/११८५ ; ८/२७०६।

या यों कहिए एक नई जबान सी पनप उठी है। इसके बाद तिलेल-गुरेसी श्रिण्या का स्थान आता है। दरअसल मेरा यहीं की भाषा के क्रिया-पदों से सम्बन्ध है क्योंकि यह मेरी जन्मभूमि है। गुरेस की ६ मील लम्बी घाटी को पार करने के उपरान्त तिलेल की सुन्दरतम-घाटी ६० मील लम्बे भू-भाग पर फैली मिलती है। गुरेस की घाटी के यातायात के सम्बन्ध कश्मीर से हैं। इस घाटी की श्रिण्या भाषा पर कश्मीरी का बड़ा प्रभाव है। यहाँ कुछ एक ऐसे गांव हैं जहाँ के लोग कश्मीरी भाषा ही बोलते हैं, यदि कभी वे श्रिण्या बोलते भी हैं तो ध्वनि कश्मीरी भाषा की ही रहती है। इन कश्मीरी भाषा भाषी गाँवों के नाम हैं :—(१) दावर, (२) बगतोर, (३) फकीरपुरा। संभवत: इन लोगों के संपर्क से या इन्हीं लोगों में से ग्रियर्सन नें किसी को अपना गाइड चुना होगा जिसके फलस्वरूप उन्होंने श्रिण्या और कश्मीरी को एक ही भाषा माना। हकीकत यह है कि इन गाँवों के लोग नाम को श्रिण्या बोलते हैं, असल में वे कश्मीरी ही बोलते हैं।

फकीरपुरा में रहनेवाले कुछ ऐसी जबान बोलते हैं जो पचास फी-सदी श्रिण्या है और ५०% कश्मीरी। अलबत्ता तिलेल-घाटी पर कश्मीरी जुबान का असर शून्य है और न तिलेल घाटी के आसपास और कोई भाषा ही बोली जाती है, जिसका असर इस भाषा पर पड़ सकता है। गुरेस घाटी के लोग जब तिलेल के मध्य-भाग में जाते हैं तो प्रथमत: उन्हें उनके उच्चारण को सुनकर ऐसा लगता है कि जैसे कोई विदेशी भाषा है। मगर तिलेल का यातायात का रास्ता गुरेस से ही है। तिलेल के दूसरी तरफ द्रास का इलाका है पर दुर्गम मार्ग होने के कारण शायद साल में एक-आध आदमी ही उस रास्ते से जाता हो। गुरेसी और तिलेली में थोड़ा-सा ध्वन्यात्मक भेद अवश्य है मगर अधिक नहीं।

तिलेली→नेंइ़बा (नही रे)
गुरेसी→नेवा (नही रे)
तिलेली→ओव (हां)
गुरेसी→ओ (हां)
तिलेली→खलोंव् (निकाला)
गुरेसी→खलो (निकाला)
तिलेली→छोंरो (रखा)
गुरेसी→छरो (रखा)

यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि तिलेल में श्रिण्या भाषा का स्वरूप अमिश्रित और अन्य भाषाओं के प्रभाव से रहित है। श्रिण्या मातृ-भाषा होने के कारण, मैं दोनों में विशेष फर्क नहीं समझता हूँ। इस कारण इस लेख में जो भी सामग्री प्रस्तुत कर रहा हूँ, उसका भाषात्मक प्रचलन गुरेस-तिलेल में एक समान है।

इस घाटी को श्रिण्या भाषा में 'गुरैय' और यहाँ के निवासियों को 'गुराच्रु' कहते हैं। कुछ लोगों की राय है यह फारसी भाषा का 'गुरेज़' शब्द है जिसका अर्थ है—भागना। मगर इससे कोई स्पष्टि नहीं होती है। कई विदेशी विद्वानों का तर्क है कि यह शब्द फारसी "गावरेज" है, जिसका अर्थ है तीन कोस, जो ६ मील बनता है। गुरेस घाटी की लंबाई भी यही है। मेरा अपना अन्दाज़ है कि इसका ताल्लुक संस्कृत के निम्नलिखित शब्दों से होना चाहिए (१) गिरि+आस्य, (२) गिरि+आलय, (३) गरिज। यदि गुरेस की भौगोलिकता सामने रखें तो अवश्य ही इन तीनों में कोई इस प्रदेश का आदिम नाम होना चाहिए। गुरेस का आकार चौड़े और खुले मुख के समान है अतः गिरि+आस्य यानी पर्वत के मुख में, गिरि+आलय तो सारा गुरेस है ही और यदि यह मानें कि पर्वत 'पर' या 'में' पैदा होने वाले मनुष्य, तो भी स्पष्टि होती है जैसे संस्कृत में "गिरिजा" पार्वती को कहते हैं। मगर गुरैय की आधुनिक अपभ्रंश ध्वनि गिरि+आलय के अधिक निकट है। मगर सवाल यह है, कि श्रिण्या-भाषा में यहाँ के रहनेवालों को 'गुराच्रु' कहते हैं। शायद कल्हण ने जो गिरि-राष्ट्रीयः संकेत दरद के लिए किया है उसी का यह बिगड़ा रूप है क्योंकि राज और राष्ट्र को श्रिण्या में 'राश' और 'राच' कहते हैं। गुरैय-घाटी चौड़ाई में कहीं भी आधे मील से अधिक नहीं है इस घाटी के चारों ओर गगनचुम्बी पर्वत शृंखलाएँ खड़ी हैं। तिलेल में केवल दर्रे, खाइयाँ और घाटियाँ हैं, इन्हीं दर्रों के बीच में जहाँ भी जमीन का टुकड़ा है छोटी-सी बस्ती अवश्य मिलेगी। यही कारण है कि यहाँ की आबादी बहुत कम है, और गाँव दूर-दूर बिखरे पड़े हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि सारा इलाका पहाड़ी है मगर हैरत-अंगेज़ बात यह है जितना पहाड़ीपन का असर कश्मीरी ज़बान पर है उतना यहाँ की ज़बान पर नहीं है। श्रिण्या हिन्दुस्तान के मैदानी इलाके में बोली जाने वाली जबानों के अधिक नजदीक है। मैं दावे से कह सकता हूँ श्रिण्या का जितना गहरा रिश्ता अन्य

हिन्दुस्तानी ज़बानों से है उस हिसाब से कश्मीरी से कुछ भी नहीं है। श्रिण्या पहाड़ी इलाके की भाषा होने के बावजूद मैदानी मिज़ाज रखती है। इस तथ्य पर जितना ही सोचें कश्मीरी और श्रिण्या का रिश्ता उतना ही दूर होता जाता है, जो कि सही भी है।

इससे पहले कि मैं आगे बढ़ूं, मैं उन भाषा वैज्ञानिकों के बारे में दो एक बातें कहना चाहूँगा जिन्होंने वीर बनकर गलत या सही कुछ न कुछ काम अवश्य किया है। इनमें ग्रियर्सन का नाम विशेष उल्लेखनीय है। जार्ज ग्रियर्सन अपनी कृति में इस ज़बान के ग्रैमर का एक खाका पेश करते हैं और शिण्या भाषा की विभिन्न विभाषाओं और बोलियों को अलग-अलग खण्डों में प्रस्तुत करते हैं। मैं यहाँ केवल गुरेसी श्रिण्या भाषा के बारे में ही कुछ कहना चाहता हूँ। साठ मील लम्बी तिलेल-गुरेस घाटी को वह केवल छः मील की फरमाते हैं। ज़ाहिर है उन्होंने तिलेल घाटी को एकदम अछूता छोड़ा है। गुरेस वे स्वयं कभी नहीं गये और तिलेल का उन्होंनें कोई भी उल्लेख नहीं किया है। कुल मिलाकर उनका प्रयास यहाँ की भाषा के बारे में जेम्स विल्सन की पुस्तक है जिसकी अन्धाधुन्ध नकल उतार कर उन्होंने इस भाषा का विश्लेषण किया है। इस बात को ग्रियर्सन इशारों ही इशारों में स्वयं स्वीकारते हैं। मुझे यह पता नहीं कि दूसरी भाषाओं के बारे में उनका शोध कितना सही है। पर जहाँ तक गुरेसी और तिलेली का सवाल है यह एकदम ऊलजलूल और ध्वन्यात्मकता में एकदम असंगत और विकृत है। जो व्यक्ति ध्वनि को पकड़ नहीं सका है वह यह फ़तवा कैसे दे सकता है कि फ़लानी ज़बान फलां स्रोत से निकली है। मैं तो इसे पांडित्य का दिवाला समझता हूँ। मैं इस लेख में उस सारी गड़बड़ को प्रस्तुत करने में सशक्त नहीं हूँ जो उन्होंने अपने 'गुरेसी खण्ड' में की है। अतः मैं क्रिया-परक एक तालिका को लेकर उस असंगति को दिखाने का प्रयत्न करूंगा :—

वर्तमानकाल (मैं करता हूँ)[1]

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	मॉस थिम होंस	बेस थोन हांस
मध्यम पुरुष	तुस थे हों	छोंछ् थ्यान हांन
अन्य पुरुष	जुस थेई हो	जेंस थेइन हां

१. ग्रियर्सन : भाषा सर्वेक्षण भाग ८ विभाग १८२।

जबकि इसका शुद्ध एवं संगत रूप इस प्रकार होना चाहिए :—

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	मउ़स् थेंइ़म् होंस (हनोंस)	बेंस थोन हांस (हनेंस)
मध्यम पुरुष	तुस् थे हों (हनों)	छोंछ थ्यान् हांत (हनेंत्)
अन्य पुरुष	ञ्रस थेइ़ हूँ (हनों)	ञ्रेस् थेन हां (हनें)

ग्रियर्सन उक्त "मैं करता हूँ" वाक्य को उभयलिङ्गी समझकर चले हैं। जबकि इसका स्त्रीलिङ्ग श्रिण्या भाषा में विद्यमान है :—

"स्त्रीलिङ्ग" (मैं करती हूँ)

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	मउ़स् थेंइ़म् हेंस् (हनेंस)	ब्यास् थोन् हेंस् (हनेंस्)
मध्यम पुरुष	तुस् थे हनें (हेंइ़)	छांछ़ थ्यात् हनेंत् (हेंत्)
अन्य पुरुष	ञ्रस् थेंइ हीं	ञ्रास् थेंन् हें (हनि)

शोक इस बात का है कि सर ग्रियर्सन श्रिण्या की प्रमुख ध्वनियों को पकड़ ही नहीं सकें :—

ग्रियर्स० "ज्र" या जह् ; जबकि ध्वनि "ञ्र" है। इसी प्रकार का अनर्थ अन्य ध्वनियों के साथ भी हुआ है। निम्नलिखित क्रिया सूची में जिसे ग्रियर्सन[1] ने प्रस्तुत किया है, किस कदर ध्वनियों का अनर्थकारी स्वरूप दिया है :—

ग्रियर्सन प्रस्तुत सूची (क्रिया)	शुद्ध क्रिया सूची
थियोण	थ्योंनि (करना)
ओन्ण	ओंनि (आना)
बोझोण	बंजोंनि (जाना)
खोण	खोंनि (खाना)
सोण	सोंनि (सोना)
बेंओण	बियोनि (बैठना)
पिओण	पियोनि (पीना)
वलिओण	वल्योंनि (उतारना)
चोकबोण	चांक्योंनि (उठना)
बेइहोण	बेयोंति (होना)

१. ग्रियर्सन : भाषा सर्वेक्षण भाग ८ वि० २, पृ० १८२।

विलिओण	शिल्योंनि (बीमार होना)
उंज़ाइलोण	ऊंन्यायोनि (भूख लगना)
देंओण	द्योंनि (देना)

इसके उपरान्त कुछ शब्दों को छोड़ ही दिया है। संभवत: विल्सन महोदय ने उनके रूप नहीं दिए होंगे पर आभास ऐसा दिया है जैसे उनका 'इन्फिनिट' है ही नहीं। निम्नलिखित वर्तमान-कालिक कृदन्तों में देखिए क्या कुछ हुआ है :—

ग्रियर्सन द्वारा प्रस्तुत	शुद्ध रूप श्रिण्या भाषा का
(वर्तमान कृदन्त)	(वर्तमान कृदन्त)
थइब हुं	थेंइ़ हूं (करता है)
एंइ हुं	एंइ़ हूं (आता है)
बोझुं	वोजं हूं (जाता है)
खा हुं	खा हूं (खाता है)
सेंइ हुं	सेंइ़ हू (सोता है)
बें हुं	बें हूं (बैठता है)
दी हुं	दी हूं (पीता है)
वलेंइ हुं	वलेंइ़ हूं (उतारता है)
चोकबेंइ हूं	चंक्येंइ़ या चंकेंइ़ हूं (उठाता है)
बेंइ हुं	बेंइ़ हूं (होता है)
बिला हुं	शिला हूं (बीमार होता है)
उनजाइल हुं	उञ्यालु़ हूं (भूखा है)
देइ-हुं	देइ़ हूं (देता है)

अन्य पुरुष भूतकाल

ग्रियर्सन द्वारा प्रस्तुत	शुद्ध रूप श्रिण्या भाषा का
थाउ	थंवु़ (उसने किया)
आलु	आलु (आया)
गाउ	गंव् (गया)
खिआउ	खेंव् (खाया)
सुत्तु	सुतु़ (सोया)
बेंहतु	बेटु (बैठा)

पिआउ	पियौव् (उसने पिया)
बलउ	वलौव (उतारा)
चोकबिलु	चोंकिृलु (उठा)
बिलु	बिलु (हुआ)
बिलाल	शिलालृ (बीमार हुआ)
उनयाइल	उञ्यालृ (भूख लगी)
याउ	दॅव (दिया) —

मेरा उद्देश सिर्फ़ यह दिखाना है कि ग्रियर्सन द्वारा प्रस्तुत श्रिण्या भाषा की जो भी भाषात्मक सामग्री 'भाषा सर्वेक्षण' के आठवें वाल्यूम और दूसरे हिस्से में दी है वह वाक्य-गठन में, ध्वनि में, प्रयोग में और भाषात्मक संरचना में एकदम अस्पष्ट, असंगत और एक भयानक भ्रान्ति है। मुझे तो आश्चर्य इस बात का अधिक होता है कि किस तरह उन्होंने यह दावा किया है कि कश्मीरी, श्रिण्या वर्ग की भाषा है जब कि कश्मीरी और श्रिण्या का कोई सम्बन्ध ही नहीं। मैं आगामी लेख में ग्रियर्सन द्वारा स्थापित इस भ्रान्ति का निवारण करना अपना कर्त्तव्य समझूँगा हूँ ताकि यह गलत-फहमी हमेशा के लिए दूर हो जाय। अब मैं श्रिण्या भाषा की क्रिया पर आता हूँ।

श्रिण्या भाषा में क्रिया विस्तार

(हिन्दी)	श्रिण्या)
वर्तमान काल :—	
(१) रहीम खेलता है	रहिमसं चिके थेंड़् हूं।
(२) ताजा गाती है	ताजिस् गेड़् देंड़् हूं।
पढ़	रस्
चल	यासं
खा	खंा
जा	बेंाअ्
ला	अटेंअ
पढ़ना	रजोंनि
खाना	खोंनि —
जाना	बेंाजोंनि
लाना	अट्योनि

(क) अब्दुल हंसता है।	अब्दुल हाज़ँ हूं।
(ख) रहीम गाय को देखता है।	रहिम्सं गावु ञकैय् हूं।
(ग) बच्चा रोता है।	बाल्सं हिवँ देंड़ु हूं।
(घ) रहीम किताब पढ़ता है।	रहिम्सं किताव पएँय् हूं।

क्रिया का सामान्य रूप "नि" प्रत्ययान्त :—

हिन्दी	श्रिण्या
ठहरना	बस्म्योंनि
बैठना	बैंयोंनि
आना	ओंनि
जाना	बैंजोंनि
चलना	यजोंनि
रोना	हिवंद्योंनि
सोना	सोंनि
हंसना	हजोंनि
कूदना	हिंगिद्योंनि
उछलना	प्रिक्द्योंनि
(हिन्दी)	(श्रिण्या)

अकर्मक क्रिया :—

(क) बालक हंसता है	बालं हाजॅअ हूं
(ख) करीम चलता है	करिम याज़ं हूं

सकर्मक क्रिया :—

(क) बालक हंसी हंसता है	बाल्सं हाजि हाजं हूं
(ख) करीम चाल चलता है	करिम यातं याज़' हूं

प्रेरणा में आकर भी अकर्मक क्रिया सकर्मक बन जाती है :—

(क) गाड़ी चलती है	गाड़ी याजॅअ् हीं
(ख) बैल गाड़ी को चलाता है	दोनुस् गाडी यजायें हूं
(क) बच्चा सोता है	बालं सैंड़ु हूं
(ख) मां बच्चे को सुलाती है	मास् बालं सयैय् हीं

प्रेरणार्थक क्रिया :—

उस्ताद बालको पढ़ाता है	मास्टर्सं बलट् रजायि हूं

द्विकर्मक क्रिया :—

बालक दूध पीता है	बाल्सं दुत् पी हूं।

रहीम बालक को दूध पिलाता है	रहिम्सं बलट् दुत पियायें हूं
पिता बेटे को मेला दिखाता है	मालुस् बालट् तंमार्शा पशायें हूं

सामान्य वर्तमान काल :—मैं जाता हूँ, हो, है, हैं, हो, है,

	एक वचन	**वहु वचन**
उत्तम पुरुष	मां बांजम् होंस्	बेंअ् बांजोन् हांस
मध्यम पुरुष	तु बांजें हों	छोंअ् बांजान् हांत्
अन्य पुरुष	सां बोजें हूं	सें बोजेन् हां

स्त्रीलिङ्ग

उत्तम पुरुष	मां बांजेंम् हेंस्	ब्या बांजोन् हेंस्
मध्यम पुरुष	तु बांजें हें	छां बोजात् हेंत्
अन्य पुरुष	सेंअ् बांजें हीं	सा बांजेन् हें

संदिग्ध वर्तमान "मैं जाता हूंगा, हूँगी" (पुँलिङ्ग)

उत्तम पुरुष	मां बांजेम् आस्याम्	बें बांजोन् आसोन्
मध्यम पुरुष	तु बांजें आसे	छों बांजात् आसात्
अन्य पुरुष	सां बांजेंअ् आसेंअ्	सें बांजेन् आसेन्

स्त्रीलिङ्ग

उत्तम पुरुष	मां बांजेंम् आस्यम्	ब्या बांजोन् आसोन्
मध्यम पुरुष	तु बांजें आसे	छां बोजात् आसात्
अन्य पुरुष	स्यं बांजेंअ् असेंअ्	सा बांजेंन् आसेन्

सामान्य भविष्यत् :—

'पुलिङ्ग" "मैं जाऊँगा"

	एक वचन	**वहु वचन**
उत्तम पुरुष	मां बांजेंम्	बें बांजेंान्
मध्यम पुरुष	तु बोजें	छों'य बांजात्
अन्य पुरुष	सां बांजेंअ्	सें बांजेन्

स्त्रीलिङ्ग

उत्तम पुरुष	मो बांजेंम्	ब्या बांजोन्
मध्यम पुरुष	तु बांजे	छां बांजात्
अन्य पुरुष	स्यं बांजेअ्	सा बांजेन्

आसन्नभूत :<पुलिङ्ग>"मैं गया हूँ"

	एक वचन	बहु वचन
उत्तम पुरुष	मों गास् हांस	बें ग्येस् हांस्
मध्यम पुरुष	तु गा हों	छों ग्येत् हांत्
अन्य पुरुष	सों गव हूं	सें ग्ये हां

स्त्रीलिङ्ग

उत्तम पुरुष	मों ग्येंस् हेंस्	ब्या ग्येस हेंस्
मध्यम पुरुष	तु ग्ये हें	छां ग्येत् हेंत्
अन्य पुरुष	स्यं ग्ये हें	सा ग्ये हें

पूर्णभूत<पुँलिङ्ग>"वह गया था"

	एक वचन	वहु वचन
उत्तम पुरुष	मों गस् असुलोस्	बें ग्येस् असलोस्
मध्यम पुरुष	तु गा असुलो	छों ग्येत् असलेत्
अन्य पुरुष	सों गव् असूलु	सें ग्ये असलेंअ्

<स्त्रीलिङ्ग>

उत्तम पुरुष	मों ग्येस् असलेस्	ब्या ग्येस् असलेस्
मध्यम पुरुष	तु ग्ये असलेअ्	छां ग्येत् असलेत्
अन्य पुरुष	स्यं ग्येड़ असलेअ्	सा ग्ये असलेअ्

(क्रमशः)

++++++++++++++++

(भाषा का वैज्ञानिक एवं तटस्थ अध्ययन एक ऐसा विषय है जिसे धार्मिक, व्यक्तिगत अथवा प्रादेशिक पूर्वाग्रहों से अछूता रखना चाहिए। देखा गया है कि कुछ दूषित मनोवृत्ति के लोग इस प्रकार के अध्ययनों को पूर्वाग्रहों के चश्मे से देखते हैं और साम्प्रदायिक वैमनस्य के विष का प्रचार-प्रसार व्यक्तिगत स्वार्थों के लिए करने का प्रयत्न करते हैं। हमें हर्ष ही नहीं इस वात का गर्व है कि पिछले आठ वर्षों में कश्मीरी भाषा का जो शास्त्रीय अध्ययन हम विभाग में कर रहे हैं (और उसका जो प्रकाशन 'वितस्ता' में कर रहे हैं) उससे प्रेरणा पाकर गुरेस-निवासी श्रिण्या (शोना) भाषा-भाषी श्री मसूद सामूं ने अपनी भाषा की आत्मा और उसके स्वरूप को पहिचानने का प्रयत्न किया है। हमें इस वात का भी गर्व है कि **संसार में प्रथम बार इस भाषा पर इस प्रकार का लेख हम प्रकाशित कर रहे हैं।** हम श्री सामूं को बधाई तथा धन्यवाद देते हैं और आशा करते हैं कि फारसी में एम० ए० कर लेने के बाद वे अपनी भाषा पर, और आगे, शोधकार्य करेंगे। श्री त्रिलोकीनाथ गंजू, जो श्री सामूं के प्रेरणास्रोत हैं, उनके प्रति भी हम आभारी हैं। उन्होंने ही इस लेख की भाषा का हिन्दीकरण किया है—**सम्पादक**)

पण्डित बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का क्रान्तिकारी काव्य

डा० भूषणलाल कौल
प्राध्यापक, हिन्दी विभाग,
कश्मीर विश्वविद्यालय।

श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' एक क्रान्तिदर्शी कवि थे। देश की गुलामी, शोषण, निरीह जनता का हाहाकार, सामाजिक वर्ग-भेद और पीड़ित मानवता की कराह ने इनके हृदय में विद्रोह की ज्वाला सुलगाई। यह विद्रोह उनकी कविताओं में ज्वालाओं की शत-शत चिनगारी बनकर फूट पड़ा है।[1] उस समय की असन्तोषजनक स्थिति ने उनकी क्रान्तिकारी भावनाओं को और भी उत्तेजित किया। चारों ओर आर्थिक शोषण एवं पाशविक बल का बोलबाला था। 'नवीन' ऐसी स्थिति से खिन्न हो उठे और समूल परिवर्तन के हेतु क्रान्ति का भयानक शंखनाद करने लगे। परिस्थितियों से ऊब कर कवि शोषक को समूल उखाड़ फेंकने के लिए क्रुद्ध हो उठा और नवीन सामाजिक व्यवस्था की कल्पना उनके मानस में साकार हो उठी। श्री केसरी नारायण शुक्ल ने लिखा है—"क्रान्तिवादी कविता को हम वायु के आकस्मिक आघात से उठी हुई सामान्य हिलोर कह कर नहीं टाल सकते। यह जीवन-सागर के उस क्षोभ और अव्यवस्था की लहर है जिसके दर्शन भयंकर झंझावात के आने पर ही होते हैं। हमारे वर्तमान जीवन में इसी प्रकार का झंझावात चल रहा है और क्रान्तिवादी कविता इसी अशान्ति तथा आन्दोलन की भूमिका है।"[2] साम्राज्यवाद की काली छाया से छुटकारा पाने के हेतु वे नवीन क्रान्ति का स्वागत करते हैं—

१. 'प्रबन्ध-प्रबोध'—फूलचन्द्र जैन 'सारंग'—'हिन्दी कविता में वीर एवं राष्ट्रीय भावना', पृ० १६६।

२. आधुनिक काव्यधारा—डा० शुक्ल, पृ० २७४।

आओ क्रान्ति, बलायें ले लूँ, अनाहूत आगयी भली ;
वास करो मेरे घर-आँगन, विचरो मेरी गली-गली ;
सड़ी-गली परिपाटी मेरी, इसे भस्म तुम कर जाओ ;
विकट राज्य-पथ में मँडराओ जन-पद में डोलो आओ ;
नयी अग्नि ज्वाला भड़का दो तुम मेरे अन्तरतर में ;
अरी, नये, नक्षत्र जगा दो मेरे धूमिल अम्बर में।[१]

आधुनिक युग की क्रान्तिकारी कविता के विषय में डा० रवीन्द्र सहाय ने लिखा है—"फ्रान्सीसी क्रान्ति के आदर्शों का दो युद्धों के बीच की हिन्दी कविता पर यथेष्ट प्रभाव पड़ा है। यह प्रभाव अंग्रेजी के रोमांटिक काव्य और विशेष कर 'शैली' के काव्य के माध्यम से आया है। सच तो यह है कि हम भारतवासियों ने अपने स्वतंत्रा के युद्ध में फ्रान्सीसी क्रान्ति के मूलभूत आदर्शों से निरन्तर प्रेरणा ली है। हमारे राष्ट्रीय कवियों, उदाहरणार्थ—माखनलाल चतुर्वेदी, 'नवीन', सुभद्राकुमारी चौहान आदि पर भी किसी न किसी रूप में फ्रान्सीसी क्रान्ति का प्रभाव पड़ा है।"[२] इस प्रकार विदेश की जन-क्रान्तियों ने हमारे देश के महान् कलाकारों को प्रभावित किया और स्वदेश की करुण दशा देखकर उनका कवि जाग पड़ा। विद्रोही कविताओं के विषय में स्वयं 'नवीन' जी ने 'कमलेश' जी से कहा था—"जहाँ तक विद्रोही कविताओं का सम्बन्ध है, उनकी प्रेरणा समाज की अवस्थाओं से मिलती है। जैसे मेरी कविता 'नंगे भूखों का यह गाना' है। सन् १६३६-३७ में सूती मिलों के ५० हज़ार मज़दूरों ने ५२ दिन की हड़ताल की थी। मैं उसका नेता था। उस समय २५-३० हज़ार व्यक्तियों को कानपुर की जनता से माँग कर खाना खिलाया।......विजयी होने पर 'जन-बल का गुण-गान' करने वाली एक भावना जागृत हुई और उसके फलस्वरूप उक्त कविता लिखी गई।"[३] ऐसी कविताओं में 'नवीन' जी देशवासियों को प्राणों की होली खेलने का आदेश देते हैं—

शोलों के फूलों से सज्जित सुख-शय्या हो जाने दे,
भर ले अंगारे करवट में, हूक-लूक उठ आने दे ;

---

१. 'हम विषपायी जन्म के—'क्रान्ति', पृ० ४४१।
२. 'हिन्दी काव्य पर आँग्ल प्रभाव'—डा० रवीन्द्र सहाय, पृ० १७६।
३. 'मैं इन से मिला'—दूसरी किश्त— 'कमलेश', पृ० ५४।

अरे, अकर्मण्यता शिथिलता भस्मसात हो जाने दे,
अग्नि-चिता में विजित भाव को तू अब तो सो जाने दे,
त्राहि ? त्राहि ? रे, प्राण कौन-सा ? आज प्राण की होली है ?
तेरी दाहक स्वर-लपटों में स्वयं त्राण की होली है ॥[१]

क्रान्तिकारी कविता का क्षेत्र व्यापक एवं विस्तृत होता है। युगीन परिस्थितियों से प्रभावित कवि सम्पूर्ण राष्ट्र में विद्रोही रचनाओं द्वारा जागरण का पुनीत स्वर फूँक देते हैं। डा० केसरी नारायण शुक्ल ने लिखा है—"क्रान्तिवादी कवि सारे संसार में क्रान्ति का आवाहन करता है और किसी देश विशेष की राजनीतिक उन्नति तथा स्वतंत्रता की कामना न कर सारे राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक अत्याचारों से मुक्ति चाहता है। क्रान्तिवादी कवि ऐसी सभ्यता का विकास और नई व्यवस्था का जन्म देखना चाहता है जिसमें सारी मानवता दासता, दरिद्रता और अंधविश्वास के पाश से मुक्त होकर शान्ति और समता का अनुभव कर सके।"[२] नई व्यवस्था को जन्म देने के लिए कवि प्राचीन रूढ़ियों एवं परम्पराओं का नाश चाहता है। जनता को प्रलयंकर रूप धारण करने के लिए स्फूर्ति प्रदान करता है—

तू नाशक ध्वनियों का गायक, तू विकराल क्रान्ति द्रष्टा,
तू विद्रोह रूप प्रलयंकर, तू है अनल-राग-स्रष्टा ;
तेरे प्राणों में तड़पन है, नीच भावना अब कैसी ?
यह विश्वासघात अब कैसा ? दुष्कृतियाँ क्यों, अब ऐसी ?
कर दे क्षार-क्षार अपनी इन प्राण मोहिनी कृतियों को,
खण्ड-खण्ड कर दे, रे मोही, निज निर्बल संस्मृतियों को ।[३]

परिस्थितियों के अनुकूल होने के कारण 'नवीन' जी की क्रान्तिकारी कविताओं ने अत्यधिक ख्याति पाई क्योंकि जब हमारा घर जल रहा था, तब एकान्त-चिन्तन या पूजा करने का ध्यान अनुचित और असामयिक लगता।[४] 'करो या मरो' की भावना सशस्त्र क्रान्ति के रूप में भमक उठी।

१. 'हम विषपायी जन्म के'—'तू विद्रोह रूप, प्रलयंरक', पृ० ४१४।
२. 'आधुनिक काव्य धारा'—डा० शुक्ल, पृ० २७४।
३. 'हम विषपायी जन्म के'—'तू विद्रोह रूप प्रलयंकर', पृ० ४१४।
४. 'हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास'—रामबहोरी शुक्ल एवं भगीरथ मिश्र, पृ० २२०।

भारतीय नव-युवक देश के पुनरुत्थान के लिए फाँसी के झूले पर झूलने लगे और 'नवीन' जी ने उनसे प्रेरणा ग्रहण करके उग्र वाणी में जन-मन की भावनाओं को अभिव्यक्त किया। श्री ठाकुर प्रसादसिंह ने लिखा है—'क्रान्ति और कविता—नवीन जी ने इन दोनों को पर्याय समझा था, इसलिये कानपुर में असहयोग आन्दोलन की विशाल सभाओं में उन्होंने ललकार भरी कविताएँ पढ़ीं, कवि सम्मेलनों में क्रान्ति के राग अलापे। वे जिस पीढ़ी में जीवित थे उसकी रगों में खून की जगह पिघला हुआ रोष प्रवाहित होता था, साँसों की जगह उद्वेग तपता था, आँखों में पुतलियों की जगह सपने लगे हुए थे। इस पीढ़ी के सच्चे प्रतिनिधि 'नवीन' जी थे।[१] 'नवीन' विदेशियों के षड्यन्त्रकारी दलदल से सदैव सचेत रहे। समझौते की भावना उनके लिए असह्य थी। उनके पद-चिह्न क्रान्तिकारी के पद-चिह्न थे[२] और क्रान्ति का योद्धा अन्तिम क्षण तक युद्धरत रहा—

क्रान्ति ? क्रान्ति ? मेरे आँगन में यह कैसा हुंकार मचा ?
बोलो तो यह किसने अपने श्वासों का फुंकार रचा ?
झंकारों, धनु टंकारों का यह चिर परिचित स्वर छाया ;
रण-भेरी का यह भैरव-रव कहो कहाँ से घिर आया ?
क्या सचमुच ही महाप्रलय की आँधी उठ आयी क्षण में ?
ऐं ? क्या महा-क्रान्ति मतवाली आयी मेरे प्रांगण में ?[३]

'विप्लव-गायन' 'नवीन' जी की सर्व प्रसिद्ध एवं बहुचर्चित रचना है। इसको लेखन-तिथि के विषय में विद्वानों में मतभेद है। पण्डित श्रीराम शर्मा ने अपनी एक प्रत्यक्ष भेंट में मुझे बताया कि यह रचना सन् १९३० में लिखी गई है।[४] श्री लक्ष्मीनारायण दुबे ने लिखा है—'प्रताप मण्डल के पुराने सदस्य एवं कवि श्री देवीदत्त मिश्र ने इसे सन् १९३० की ही रचना माना है और शहीदे-आजम सरदार भगतसिंह के प्राण-दण्ड की घोषणा से उत्पन्न भारत-व्यापी हड़कम्प का जीवित प्रतिध्वनि माना है।'[५] यद्यपि यह उद्घोष

१. 'नर्मदा'—'नवीन' विशेषांक—१९६३—'तुम हरोगे रात का भय'—ठाकुर प्रसाद सिंह, पृ० १०९।
२. 'कृति' मई १९६० 'महाप्रस्थानेर पथ'—श्री नरेश मेहता, पृ० ५१।
३. 'हम विषपायी जन्म के'—क्रान्ति, पृ० ४४०।
४. स्वर्गीय पण्डित श्रीराम शर्मा से प्रत्यक्ष भेंट द्वारा ज्ञात, (२-२-१९६५)
५. 'नवीन'—'व्यक्ति एवं काव्य'—डा० दुबे, पृ० २१५।

गांधीवादी विचारधारा के विरुद्ध है परन्तु इसकी प्रेरणा कवि को गांधीजी से ही मिली है। स्वयं 'नवीन' जी ने श्री पद्मसिंह शर्मा से इस रचना के विषय में कहा था—"यह बात नहीं है। गान्धीजी की प्रेरणा से ही वह 'विप्लव-गायन' आया है। उसका रहस्य यह है कि प्रारम्भिक क्रान्ति करने की भावना सर्वग्राही होती है। उस समय नई भावना के आवेश में विचारों पर नियन्त्रण नहीं रहता। नियंत्रण होता तो "माता की छाती का मधु रसमय पय काल कूट हो जायें" जैसी पंक्ति जिसका सीधा अर्थ नहीं निकलता, कैसे आती। उस समय तो केवल यही भावना थी कि 'नया आकाश, नई पृथ्वी और नया मानव निकले।'[1] 'नवीन' जी युग परिवर्तन के लिए महा नाश को आमंत्रित करते हैं—

कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल-पुथल मच जाये,
एक हिलोर इधर से आये एक हिलोर उधर से आये,
प्राणों के लाले पड़ जायें, त्राहि-त्राहि स्वर नभ में छाये,
नाश और सत्यानाशों का धुआँधार जग में छा जाये,
बरसे आग, जलद जल जाये, भस्मासात भूधर हो जाये,
पाप-पुण्य सदसद भावों की धूल उड़ उठे दायें-बायें;
नभ का वक्षस्थल फट जाये, तारे टूक-टूक हो जायें
कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल-पुथल मच जाये।[2]

कवि क्रान्ति का आवाहन जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में करने लगे और क्रान्ति के साथ नाश का स्वागत भी करने लगे। उस समय की शोचनीय व्यवस्था को बिना मिटाए शान्ति और समता की स्थापना आपको असम्भव प्रतीत होती थी। श्री पन्नालाल त्रिपाठी ने लिखा है—"किन्तु, इस कविता में भी विप्लव से किसी अराजकतामय क्रान्ति की ओर संकेत न होकर मानवोचित गुणों की प्राप्ति की ओर संकेत है। कवि सबलों की बर्बरता को कायरतापूर्ण विधि से सहन नहीं कर सकता।[3] कृत्रिम शान्ति का स्थापन कवि को प्रिय नहीं। यह कायरों का छल-कपट है जिसको मिटाने के लिए कवि मचल उठता है—

१. 'मैं इनसे मिला'—दूसरी-किस्त—'कमलेश', पृ० ५१।
२. 'कुंकुम'—'विप्लव-गायन', पृ० ६–१०।
३. 'नर्मदा' 'नवीन'—विशेषांक १९६३—महाकवि 'नवीन'—पन्नालाल त्रिपाठी, पृ० ८०।

माता की छाती का अमृत मय पय काल कूट हो जाये,
आँखों का पानी सूखे, हाँ, वह खून की घूँट हो जाये,
एक ओर कायरता काँपे, गतानुगत विगलित हो जाये,
अन्धे मूढ़ विचारों की वह अचल शिला विचलित हो जाये,
और दूसरी ओर कँपा देने वाला गर्जन उठ धाये,
अन्तरिक्ष में एक उसी नाशक तर्जन की ध्वनि मँडराये
कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल-पुथल मच जाये।[1]

कवि ने क्रान्ति की चिनगारी सुलगाने के लिए प्रलय का आह्वान किया और संघर्ष की इस पावन बेला में बड़ी उमंग और उत्साह के साथ मरण-त्यौहार मनाने के लिए कवि ने अपनी भावनाएँ व्यक्त कीं।[2] राष्ट्रीय रंग में रंगी हुई उनकी आत्मा क्रान्ति का आवाहन करने के लिए तड़प उठी है। दिशाएँ उनके भयंकर गर्जन से गूँज उठी हैं और कण-कण में आज वही ध्वनि व्याप्त है। "नवीन" की भीम-गर्जना जग को चकनाचूर करने के लिए विकल है—

कण-कण में है व्याप्त वही स्वर रोम-रोम गाता है वह ध्वनि,
वही तान गाती रहती है कालकूट फणि की चिन्तामणि,
जीवन ज्योति लुप्त है आहा ! सुप्त है संरक्षण की घड़ियाँ।
लटक रही है प्रतिफल में इस नाशक संभक्षण की लड़ियाँ।
चकनाचूर करो जग को गूँजे ब्रह्माण्ड नाश के स्वर से।
रूद्ध गीत की कुछ तान निकली है मेरे अन्तरतर से।[3]

प्रो० दुर्गादास शास्त्री ने लिखा है—"विप्लव-गायन से कई तरुणों को ऐसी बलवती प्रेरणा मिली है कि वे देश पर हंसते-हंसते निछावर हो गये हैं। आज यह भी कहा जा सकता है कि उस रचना का पहला श्रोता अमर शहीद सरदार भगतसिंह था।[4] प्रलय के बाद सृष्ठि, उत्थान, फिर पतन, शान्ति उसके पश्चात् क्रान्ति यही समय-चक्र सभ्यता संस्कृति जीवन एवं

---

१. 'कुंकुम" 'विप्लव-गायन', पृ० १०-११।
२. 'हिन्दी साहित्य में विविध वाद'—डा० प्रेम नारायण शुक्ल, पृ० २१७।
३. "कुंकुम" 'विप्लव-गायन', पृ० १२।
४. 'कल्लोल'—(आधुनिक कविताओं का संकलन) संकलनकर्ता—प्रो० दुर्गादत्त शर्मा—पृ० ११४।

संसार के मूल में निहित है।[1] कवि 'नवीन' सृष्टि के लिए क्रान्ति की ज्वाला धधका कर सब कुछ स्वाहा कर देने की बात कहते हैं—

हम ने नव सृज-प्रेरणा से छिटकाये तारे अम्बर में,
हम भी विनाश पर आये हैं इस निखिल विश्व-आडम्बर में ;
हम सृष्टा हैं, प्रलयंकर हम, हम सतत क्रान्ति की प्रखर धारा–
हम विप्लव-रण-चण्डिका-जनक, हम विद्रोही, हम दुर्निवार।[2]

वर्तमान के प्रति घोर असन्तोष की भावना अत्यन्त ओजपूर्ण शब्दों में 'नवीन' ने व्यक्त की है। विद्रोह की भावना से ओतप्रोत उनका काव्य प्राचीन धार्मिक एवं सामाजिक आदर्शों को चुनौती देता है। उनके काव्य में तत्कालीन मानव-जीवन की दरिद्रता और दुर्दशा का यथार्थ चित्रण[3] मिलता है—

इतना गर्जन, इतना तर्जन, इतना धर्षण, इतना घर्षण,
इतना मर्दन दुर्दमनशील, यह अधःपतन का आकर्षण,
ये घृणित धर्म के घटाटोप, ये धृणित दीन की आकृतियाँ,
ये सब मिलकर कर रहे आज मानज की भ्रष्ट, विकृत कृतियाँ
अबलाओं, अरक्षिताओं की हत्या करना बन गया धर्म
पथ-चलते अनजाने जन का उत्सादन है कर्तव्य-कर्म ![4]

विषाक्त परिस्थितियों से क्षुब्ध 'नवीन' ने गान्धीजी की अहिंसात्मक नीति का खुल कर विरोध किया। सन् १९४० के पश्चात् विदेशियों के आमानुषिक व्यवहार के कारण 'नवीन' ईंट का जवाब पत्थर से देना चाहते हैं। गान्धीजी उनके लिए पूजनीय थे परन्तु कभी-कभी उनके महान आदर्शों को अपनाने में उन्होंने असमर्थता प्रकट की है। स्वयं 'नवीन' जी ने लिखा है—"अब समय है कि हम सम्मोहन-पाश से निकल कर वास्तविकता की ओर दृष्टि-पात करें। गान्धी महान हैं, पर हम उसके माप-दण्ड पर खरे नहीं

१. 'चिड़ावा कालेज पत्रिका' फरवरी १९६३—'हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय कविता' —श्री राजेश, पृ० ३।
२. 'हम विषपायी जन्म के'—विद्रोही, पृ० ४८१।
३. क्रान्तिवादी कवि यथार्थवाद के अत्यधिक प्रेमी होते हैं और इसीलिए इनकी रचनाओं में यथार्थ जीवन की दरिद्रता और दुर्दशा के चित्र अत्यधिक मिलते हैं। आधु० काव्य-धारा, डा० केसरी नारायण शुक्ल, पृ० २८५।
४. प्राणार्पण, पृ० ८।

उतर रहे हैं। इसलिए हमें हिम्मत के साथ बातें स्पष्टतापूर्वक कह देनी चाहिए। हमारी आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी और वर्किंग कमेटी गान्धीजी से साफ कह दे कि चर्खा, वैज्ञानिक दृष्टि से अकाट्य होते हुए भी अव्यवहार्य और खादी गरीबों के लिए एक एश की चीज है—हम आपको धोखे में नहीं रखना चाहते, हम चर्खा-खादी के चलाने में नितान्त असमर्थ हैं, अतः हमें राष्ट्र के क्रान्तिमूलक संगठनात्मक वल को बढ़ाने के लिए अन्य उपायों को खोजने की जरूरता है।"[1] महानाश की भट्ठी को धधक उठने के लिए 'नवीन' जी आवाहन करते हैं ताकि दासत्व की शृंखलाएँ भस्म हो जाएँ—

सिंह-द्वार मरण-जीवन का आज मुक्त हो जाये, सजनी
आज उगादे सूर्य न या तू हो अब शेष उसकी रजनी,
कर दे भस्म शृंखलाओं की ये सब कड़ियाँ न्यारी-न्यारी।
अरी, धधक उठ धक-धक कर तू, महानाश की भट्ठी न्यारी।[2]

जिस समय बालकृष्ण राष्ट्र के उस काव्य को लिखते, जिससे युग जग जाया करता है, उस समय ढला हुआ गरम-गरम फौलाद मानों उनकी पंक्तियों में आ बैठता। सन् १९३२ की महान्-जन-क्रान्ति के समय 'नवीन जी की लेखनी ने उग्रतम रूप धारणा किया। कांग्रेस ने 'भारत छोड़ो' का प्रस्ताव पास किया और देश में जन-संहार भयंकर रूप से होने लगा। कवि ने हलाहल पान के लिए देशवासियों को ललकारा और क्रान्ति का सजीव चित्रण निम्नलिखित पंक्तियों में किया—

आज वही सागर-मन्थन है, जो होता है कालान्तर में,
आज वही भीषण घर्षण है कर्षण है जग के प्रान्तर में!
जन-उद्यम का मेरु-गिरीश्वर : मन्थन दण्ड बना बलशाली ;
भोग-भाव के शेषनाग की मन्थन-रज्जु की बिकराली ;
यह अथाह, अज्ञात तत्व का अतल महार्णव लहर रहा है।
मथित व्यथित उसका अन्तस्तल उफ़न रहा है घहर रहा है!'[3]

---

१. नर्मदा—'नवीन' विशेषांक, पृ० १०१—'गान्धी युग का अन्त : हम चर्खे का मोह छोड़ें', 'नवीन'।
२. 'हम विषपायी जन्म के'—'गरल पियो तुम! गरल पियो तुम!!' पृ० ४१६।
३. वही।

डा० लक्ष्मीनारायण दुबे ने लिखा है—"भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की अन्तिम गगन भेदी हुंकार सन् १९४२ की महान क्रान्ति है। कवि की राष्ट्रीय-चेतना भी धीरे-धीरे विकसित होते, इस क्रान्ति के समय, कालानुसार अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गई।"[1] सन् १९४३ में बंगाल के भयंकर अकाल के कारण देश की आर्थिक स्थिति दयनीय बन गई। 'नवीन' जी ने सन् १९४४ में केन्द्रीय कारागार, बरेली से ही भारतवासियों को अपने महान दायित्व की स्मृति दिलाई है—

आज तुम्हारे ऊपर कितना है महान् दायित्व, निहारो।
तुम्हें विनाश और सिरजन का करना है यह काज, विचारो!
इन चालीस कोटि मुरदों के प्राण फूँकने तुम आये हो;
नवल जागरण और संगठन का सन्देश तुम्हीं लाये हो।[2]

'नवीन' जी अपने मार्ग की बाधाओं से अच्छी तरह परिचित थे। परन्तु वे 'सर कटाना जानते थे, सर झुकाना नहीं।' श्रीमती महादेवी वर्मा ने लिखा है—"एक क्रान्तिकारी का आत्मत्याग, एक योद्धा का शौर्य और एक कवि की भावुकता—ये तीनों ऐसे तत्व हैं, जिन्हें एक साथ रखना सम्भव नहीं होता। परन्तु उनके जीवन में, उनके चरित्र में इन तीनों ही विशेषताओं ने एक त्रिवेणी बना दी थी। वे गोलियों के सामने रह सकते थे।"[3] 'नवीन' जी एक अग्निमयी क्रान्ति[4] चाहते थे, यही कारण है कि सर्वनाश का अभय सन्देश वह जनता को देने लगे—

मानव, क्या तू न सुनेगा यह,—
युग-वाणी का गर्जन अह-रह ?
यह सर्वनाश-सन्देश अभय
यह निर्वाण आह्वाहन दुर्वह;

---

१. 'नवीन' व्यक्ति एवं काव्य'—डा० दुबे, पृ० २०६।
२. 'हम विषपायी जन्म के'—'आज क्रान्ति का शंख बज रहा', पृ० ४७७।
३. 'कृति'—मई १९६०—दो श्रद्धांजलियाँ—श्रीमती महादेवी वर्मा, पृ० ५२।
४. कवि एक अग्निमयी क्रान्ति चाहता था जिसमें परतन्त्र राष्ट्र का कण-कण भस्मीभूत हो जाये। इस भयानक महानाश के आह्वान के पीछे सुन्दर निर्माण की भावना ही कवि को इसके लिए अनुप्रेरित करती सी जान पड़ती है। इसके लिए वह देश की आँखों में पानी नहीं अपितु लहू तिरता हुआ देखना चाहता था। 'नवीन-दर्शन'—प्रो० उपाध्याय, पृ० २३।

तू बन विजयी, जय-ध्वजा गाड़
सिंहों की-सी करके दहाड़।[1]

देश भर के क्रान्तिकारियों को उस समय 'प्रताप-प्रेस' में आश्रय मिलता था। 'नवीन' जी प्रताप परिवार के सदस्य थे और होली खेलने की वहीं से उन्हें प्रेरणा मिली थी। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने लिखा है—"उथल-पुथल या क्रान्ति के गीतों से उनका काव्य जनमा और उसी मार्ग पर वह बढ़ा। कवि होने के नाते वे अत्यन्त कुशाग्र बुद्धि थे। पर यहाँ भी सहृदयता उनकी विशेषता थी।"[2] निरन्तर संघर्षमय जीवन व्यतीत करते हुए उन्होंने बीहड़ भीषण एवं दुर्गम पथ पार किए, यातनाएँ झेली एवं जीवन को सफल एवं सप्रयोजन सिद्ध किया—

आज ठिठक कर खड़ा हो गया विप्लव के पथ का यह राही,
टेक लकुटिया लगा देखने पीछे को यह क्रान्ति सिपाही
कितना बीहड़, कितना भीषण दुर्गम पथ यह तै कर आया।
कहाँ-कहाँ के अमित धूल कण निज वसनों में यह भर लाया।[3]

निष्कर्षतः—हम कह सकते हैं कि 'नवीन' जी का क्रान्तिकारी काव्य सबल एवं सशक्त है। जहाँ एक ओर महानाश का आमंत्रण है वहाँ दूसरी ओर नव-निर्माण की भावना भी इसमें निहित है। वे क्रन्तिकारी कवियों में अग्रगण्य थे। चिरकालीन स्वातन्त्र्य-समर में उन्होंने एक वीर सेनानी की भाँति जीवन अर्पण किया और मृत्यु-पर्यन्त सबल योद्धा के समान जीवन से संघर्ष करते रहे।

++++++++++++++++

१. 'हम विषपायी जन्म के'—'गरजे मेरे सागर पहाड़', पृ० ४१२।
२. विशाल-भारत—(जनवरी-जून १९६०) स्वर्गीय 'नवीन' जी, वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ० ४७९।
३. 'हम विषपायी जन्म के' 'आज क्रान्ति का शंख बज रहा', पृ० ४६७।

भारतीयता के परिप्रेक्ष्य में 'कश्मीरी काव्य'

डा० मुहम्मद अयूब 'खाँ'
प्राध्यापक, हिन्दी विभाग
कश्मीर विश्वविद्यालय

जिस प्रकार कश्मीरी भाषा का सम्बन्ध आर्य भाषा-परिवार से है उसी प्रकार यहाँ के काव्य का मूलतः सम्बन्ध आर्य काव्य-परम्परा से माना जा सकता है। ईरान और भारत की भाषा और साहित्य में जो भी परम्परा परिलक्षित होती है उन दोनों का सुन्दर सामंजस्य कश्मीरी भाषा और साहित्य में देखने को मिलता है। भारत में हिन्दू-मुस्लिम संस्कृतियों का सुन्दर मिलन इसी आधार पर हुआ है। यह अब सर्वग्राह्य सत्य है कि कश्मीरी काव्य का कलेवर चाहे विदेशी प्रभाव से मिलकर बना हो लेकिन उसका आत्म-पक्ष विशुद्ध भारतीय चिंतन, और अनुभूति से प्राणान्वित है। यहाँ भारत का अर्थ उन नवीन संस्कृतियों के मिश्रित रस से सम्बद्ध है जिन्होंने समय-समय पर दो धर्मों, दो जातियों को अद्वैत सम्बन्ध में ढाला है। इस दृष्टि से कश्मीर भारत का प्रतिनिधि बना रहा है। कभी-कभी तो आश्चर्य-जनक तथ्य देखने को मिलते हैं। जो विचार-धारा भारत में महान कवियों के काव्य में अनुस्यूत रही है वही कश्मीर के समसामयिक कवियों के काव्य में समानान्तर बन कर प्रकट हुई है। प्राचीन युग में कश्मीर की घाटी शेष देश से अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण अलग-थलग होते हुए भी विचार-साम्य को अंकुरित करती रही है। इस तथ्य से यह स्पष्ट प्रमाण मिलता है कि यहाँ के निवासी मूलतः भारतीय दर्शन से प्रभावित हैं। शितिकंठ (संवत् १२००–१३०० ई०) के 'महानय प्रकाश' से लेकर अभिनव गुप्त के ग्रन्थों में चर्या-पदों की परम्परा उपलब्ध होती है उसकी तुलना नाथ-सिद्धों के चर्या-पदों से की जा सकती है। त्रिकदर्शन का अद्वैत रूप और नाथ-सिद्धों का

अद्वैत रूप मूल में एक ही अर्थ रखता है और उत्तर भारत में जो प्राकृत का रूप प्रचलित था वही कश्मीर में भी परिलक्षित होता है।

भाषा की दृष्टि से कश्मीरी को यदि एक स्वतन्त्र प्राकृत से सम्बद्ध माना जाय तब भी किसी को आपत्ति नहीं हो सकती। शितिकंठ के 'महानय प्रकाश' में जो कश्मीरी प्राकृत मिलती है वह संस्कृत भाषा के बहुत निकट है अतः हिन्दी का पूर्वजरूप सा प्रतीत होती है।[1] उसे भाव की दृष्टि से भी भारतीय माना जायगा। शितिकंठ के बाद महेश्वरानन्द के प्राकृत काव्य 'महार्थ मंजरी' में एक पंक्ति आधुनिक कश्मीरी भाषा से मिलती जुलती है—"अकु अकु पञ्चगुनी" विचार की दृष्टि से 'महार्थ मंजरी' में अद्वैतवाद की ही अभिव्यंजना हुई है—

"ईश्वर के जगत का आधार होने के लिए किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं (क्योंकि) जो जल में डूबा हो उसे क्या प्यास रहती ?

लल्लेश्वरी का युग महेश्वरानन्द के बाद ही आता है। वह सुल्तान शहाबुद्दीन (सन् १३३५–१३७४ ई०) के समकालीन मानी जाती है। लेकिन दीर्घायु होने के नाते लल्लेश्वरी कबीर की समसामयिक मानी जा सकती है। यह वह युग था जब सूफी संतों और भक्त कवियों ने भारत में 'साम्प्रदायिक आग को रोकने का सफल प्रयत्न किया था। भक्ति आन्दोलन का प्रभाव कश्मीर में भी हुआ और साथ ही शेखनूरुद्दीन जैसे सूफ़ियों ने जाति-पाँति, भेदभाव को समाप्त करने के लिए योग दिया। इन सन्तों का साधना-पथ है प्रेम, और लक्ष्य है परम तत्व अर्थात् अद्वैत की प्राप्ति। इन्होंने अनुभूति के आधार पर ही काव्य की रचना की है। लल्लेश्वरी ने कबीर की भाँति ही भेदभाव को दूर करने की बात बड़े आत्मविश्वास के साथ कही है—

---

१. नित्य समाधाने डलवाने
चर्याचर्य कामे उक्किष्ट
लोकि लोकोत्तर वसवाने
एहु कमथु भजीव नयनिष्ट

कश्मीरी रूपान्तर—
न्यथ सामादानि अडलुवन्य
चर्या चर्यक कमि उक्किष्ट।
लूकि लूकूत्तरि वसुवुन्य
यि हुम कमोच बजिव नयनिह।

संस्कृत रूप—
नित्य समाधानेन अदोलंय मान :
चर्याचर्य क्रमेण उत्कृष्ठा:
लोके लोकोत्तरे च वसन्तः
इमे एक क्रमार्थ नयनिष्ठा :

हिन्दी—
नित्य समाधान से अदोलयमान
चर्याचर्य-क्रम से उत्कृष्ट (मन को)
लोक लोकोत्तर में वसते हुए इसी एक क्रम से आगे बढ़ा।

यह अपना और पराया
मैंने एक सम सब जाना।
यह रात और वह दिन है
दोनों में भेद न माना॥
जिसके मन द्वैत नहीं है,
जो भेद-भाव से ऊपर।
देवों के गुरु को देखा,
भरपूर उसी ने भू पर॥[1]

हिन्दी के मूलस्वर और लल्लेश्वरी के काव्य के मूलस्वर में कोई भेद नहीं है। यहाँ तक कि उसकी भाषा में हिन्दी के बीजांकुर ढूँढे जा सकते हैं। इसके प्रमाण में लल्लेश्वरी के निम्नउद्धृत वाक् के सफेद शब्दों पर विचार किया जा सकता है—

गगन **च़य** भूतल **च़य**
च़य द्यन (**दिन**) पवन त रात।
अर्ग (**अर्घ**) **त** चन्दन पोभ (**पुहुप, पुष्प**) **पोअ** (**पायी**) **च़य**
च़य न सोरुय (**सारी**) लागिजि क्याह (**क्या**)

लल्लेश्वरी के बाद नुन्द ऋषि अर्थात् शेख नूरुद्दीन का काव्य आता है। वे एक साधक कवि थे। नुन्द ऋषि भी मूल भारतीय अद्वैत के आलोक से भास्वर हैं—

---

१. अणा खु वीस मूल
तत्थ पमाण ण कोवि अथेई।
क: स व होइ पियासा
गथा सुत्तंणि मानस्स॥

तुलना कीजिए—

काहेरी नलिनी तू कुम्हिलानी।
तेरे ही नाल सरोवर पानी॥
अथवा
जलमें मीन पियासी।
मोहि सुनि सुनि आवत हासी॥
—कबीर

२. परत पान यमि
समुय मोन
यमि हिन्दुय योग
दयव किन्हो राथ
यमि सय मने अद्वव सांपुन
तेमी ड्यूठुय स्वर-स्वर नाथ।

वही था और रहेगा वही
जीव उसी का रट ले नाम।
वही स्वयं भ्रम दूर करेगा
जीव, चेतना से ले काम ॥[1]

शेखनूरूद्दीन के काव्य में भी आगर (आगार), क्रिय (क्रिया), शन्य (शून्य) स्वन (स्वर्ण), प्रज्ञल्य (प्रज्ज्वलित), द्यन (दिन) तारक, जिहा (जिह्वा) कालस (कालका), राजहोंस (राजहंस) इत्यादि ऐसे शब्द हैं जो कश्मीर में हिन्दी को पल्लवित करने के लिए सहायक सिद्ध हुए हैं।

शेख नूरुद्दीन के पश्चात् जैनुल आबदीन (बडशाह) के शासन-काल (सन् १४२१–१४७२ ई०) में भट्टावतार कृत वाणासुर वध-कथा खण्ड-काव्य मिलता है। इससे पूर्ल प्रबन्ध-काव्य की परम्परा अवश्य रही होगी जो बुत-शिकन सिकन्दर के समय में पुस्तकालयों के जलाने के कारण अविशिष्ट नहीं है। यही कारण है कि शेख नूरुद्दीन के वाद कश्मीरी काव्य का कोई विशेष महत्वपूर्ण ग्रन्थ नहीं मिलता। भट्टावतार के बाद कश्मीरी काव्य-जगत् में माधुर्य, भावना का सौकुमार्य और संगीत तत्व लेकर अवतरित हुई एक अप्सरा, जिसे हव्वा खातून के नाम से जाना जाता है। हव्वा खातून कला मर्मज्ञ भावुक सुन्दरी थी जिसे देखकर सम्बन्धो ललचाकर भागे और तपस्वियों की तपस्या खंडित हुई—

बन के तपस्वी छोड़ बन आये।
दौड़े सम्बन्धी सभी ललचाये ॥[2]

यह भाव-चित्र मेनका और विश्वामित्र की पौराणिक कथा पर आधारित है। ऐसा ही पुष्पधन्वा कामदेव का भाव चित्र देखिये—

भागे आँख मिचौली करके
मेरे मदन सुमन प्रिय आओ।[3]

इसी मदन के भावचित्र वाले गीत ने महजूर के भावुक हृदय को

---

१. सुय सुय तै सुई ओस
सुय सुय करि जिहा जुवो
२. वन के तप ऋषि तप आय वस्य वस्य
दह दरि यामन लूसित गव ॥
३. चुलहुम रोशे रोशे……

प्रेरणा दी। हब्बा के काव्य में प्रगीत काव्य विकसित हुआ। उसमें राग तत्व की प्रधानता कला के विषयीगत रूप (Subjectivity) से प्रभविष्णु बना है। उसके गीतों में व्यापक संवेदना है और है आत्माभिव्यक्ति की स्वप्निल और झिलमिलाती अभिव्यंजना। ऐन्द्रिक बोध (Sensuousness) की प्रधानता के साथ यहाँ पर लाक्षणिक प्रयोगों की विविधता और प्रतीकों की नवीनता है—

पिघली हिय हूं ज्यों सावन में
खिली चमेली हूँ मधुवन में
तुम्हारा मधुवन मेरे तन में
क्यों तुम मुझसे रूठ गये हो ?[1]

हब्बा खातून ने अपने जीवन में उतार चढ़ाव देखे हैं। शैशव पिता के सुख भरे आँगन में बीता, पति के यहाँ विषमताओं का सामना किया और तलाक पाने के बाद भाग्य ने कश्मीर सम्राट यूसुफ चक (सन् १४७२–१५५५ ई०) के महलों की महारानी बना दिया। अकबर की फौजों से परास्त होने और बन्दी बनाये जाने के बाद यूसुफ चक की यह प्रेयसी और चहेती मलिका विक्षिप्त सी इधर-उधर भटकती रही। उसके गीत जीवन की सम-विषम परिस्थितियों की करुण गाथा कहते हैं। कश्मीर का जन-मानस इन गीतों को गाते-गाते रस विभोर हो उठता है।

प्रेम और संगीत में अद्वैत सम्बन्ध है। इस संगीत के प्रभाव से हम एक दूसरे के निकट आकर परिचित ही नहीं होते अपितु आत्मिक रूप से एक हो जाते हैं। संगीत और काव्य उद्धारक हैं।[2] शेक्सपियर ने संगीत की महिमा को समझा था—

The man that hath no music in himself
Nor is moved with the cancord of sweet sounds
Is fit for treason

---

१. श्रावन्य शीन जन गलान आयस
बागन फुजिस बोन्ही
चोचुय बाग तै च बुलो छावान
च्य कवो गड्यो म्यान्य दी ?

२. तंत्री नाद कवित्तरस सरस राग रति रंग।
अन बूढ़े बूढ़े तिरे जो बूढ़े सब अंग।—**बिहारी**

संगीत और प्रेम दोनों ही रसात्मक हैं। रस अद्वैत स्थिति का व्यंजक है। जहाँ भाव-भाव से, भावना-भावना से, व्यक्ति-व्यक्ति से और आत्मा-आत्मा से मिल कर अद्वैत हो जाती है। अतः प्रेम जोड़ता है तोड़ता नहीं। प्रेम की दीवानी हव्वा खातून के गीत काल की अभेद्य दीवार तोड़ कर कश्मीर की सुन्दर घाटी में आज भी गूँजते सुनाई देते हैं। यहाँ का मस्त यौवन उन गीतों को रसमय रूप में दुहराता रहता है और सदैव दुहराता रहेगा।

हव्वा खातून के बाद एक बहुत बड़ा शून्य है। या तो हव्वा खातून की लोकप्रियता के कारण कोई कवि जम नहीं पाया और या फिर आन्तरिक स्थिति डांवाडोल रही हो। १७ वीं शताब्दी में साहिब कौल के दो ग्रन्थ। मिलते हैं—'कृष्णावतार' और 'जन्मचरित'। दोनों ही ग्रन्थ कला की दृष्टि से कोई विशेष महत्व के नहीं हैं। भाषा का जड़ रूप है। इन ग्रन्थों का केवल ऐतिहासिक अस्तित्व है। हाँ एक महत्व अवश्य है, वह है कश्मीर में कृष्ण काव्य का प्रवर्तन। यद्यपि वाणासुर वध कथा में कृष्ण एक पात्र के रूप में है तथापि भक्ति का रूप साहिब कौल के काव्य में ही प्रवर्तित हुआ है।

सत्रहवीं शताब्दी के अंत में अलकेश्वरी (रूपभवानी) और शाह कलन्दर का आध्यात्मिक द्वन्द्व बहुत प्रसिद्ध हुआ है। रूप भवानी कृष्ण-भक्ति भावना लेकर और शाह कलन्दर सूफीमत को लेकर अंत में अद्वैत भूमि पर मिल जाते हैं। रूप भवानी की कविता में हिन्दी के शब्दों का ही प्रयोग नहीं, अपितु हिन्दी में उन्होंने पद भी लिखे हैं। मुगलों के बाद पठानों के शासन-काल (१७३९–१८१९ ई०) में प्रसिद्ध फारसी के कवि भवानीदास काचरू की पत्नी अरिन्यमाल ने फिर एक बार हव्वा खातून की सी मधुर धारा प्रवाहित की। भवानीदास पठानों के राज्य-काल में उच्चपदाधिकारी थे। उनके विरुद्ध षड्यंत्र रचा गया और उन्हें कारावास का कठिन दंड भोगना पड़ा। इसीलिए अरिन्यमाल के गीतों में विरह जड़ित करुण वेदना उमड़ पड़ी है—

खिली चमेली थी मैं सावन की
जुही का रंग हुआ करनी साजन की
प्रिय आकर कब दर्शन दोगे ?[1]

---

१. अरिन्य रंग गोम श्रावनहिये
कर इये दर्शुन दिये।

अरिन्यमाल की कविता में उत्सर्ग की भावना है। प्रेम और बलिदान करने की तीव्र उत्कण्ठा है। पतिव्रता भारतीय नारी का आदर्श रूप है, इसीलिए प्रतीक्षा करती हुई कवयित्री की मनुहार व्यापक सहानुभूति जाग्रत करती है। जहाँ प्रेम में पूर्ण विश्वास है—

अगर तुम आ जाओ एकबार
गला काट कर करूँ निछावर प्राण मेरे निस्सार
पैर पड़ूँगी आस न टूटे
दुख क्यों दिये रे बालम झूटे
मैं अबला मेरा प्यार न छूटे विनती करूँ हजार
अगर तुम आ जाओ एक बार ?[1]

अरिन्यमाल के बाद प्रकाशराम ने राम-भक्ति का प्रवर्तन किया। हिन्दी की राम-भक्ति का स्वर यहाँ पर भी महाकाव्य के रूप में प्रकट हुआ है। प्रकाशराम के गीत और उनकी 'प्रकाश रामायण' के छन्द हिन्दुओं के त्योहारों और उत्सवों पर गाये जाते हैं। प्रकाश राम के बाद परमानन्द नन्दराम ने कृष्ण-काव्य का सुन्दर रूप कश्मीरी साहित्य को दिया। उनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं—सुदामा चरित, राधा-स्वयंवर और कुछ फुटकर कविताएँ। परमानन्द के काव्य में दार्शनिकता का अनुभूति परक रूप रहस्यवाद की सृष्टि करता है। परमानन्द कृष्ण और सुदामा में अद्वैत सम्बन्ध स्थापित कर देते हैं। "तब कौन सुदामा और कौन भगवान ?" दोनों अभिन्न हैं—

च्वपारय पानय ओस वुछनय
सुदामा कुनिनत, ओस भगवानय।
भगवाग ने लिना इथिनय भक्तनय
जय जय जय जय दीवकीनन्दन।

परमानन्द का समसामयिक कवि था बहाव खार। वह एक मस्त फकीर था। उसकी भाषा में संस्कृत और फारसी शब्दों का सुन्दर सम्मिश्रण है। कहीं-कहीं तो आध्यात्मिकता का स्वरूप शुद्ध भारतीय है एकोऽहं बहुस्याम की भावना मूर्तिमती की गई है—

---

१. छुम लादन आंक लटि इयना
हरिकुय वन्दसै रथ।
रावि आदन प्यमसै पादन
लति कव थवनम लथ॥

बहुत हुआ समय जब पिलाई थी मदिरा
न तब मिट्टी थी और न कुम्भकार
दैव ढूंढ़ता था अपनी जय जयकार।[1]

अहद ज़रगर ने तो भक्ति में ही आस्था रखना शुरू कर दिया। उनमें एक सच्चे सूफी के दर्शन हुए हैं। उनकी भावना का केन्द्र सगुण ब्रह्म है—

प्रिय की जब से सुनी वाणी
तब से छोड़ा कलमा-पहना जुबार
छूट गया काबा मूर्तियों में फँसा दिल
दीन और ईमान की हुई लूटमार ।।[2]

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में प्रसिद्ध सूफी महमूद गामी का उदय हुआ। महमूद गामी ने मसनवी शैली का प्रयोग किया है। काव्य की कथावस्तु फारसी है जैसे 'लैला मजनू', 'शीरी फरहाद' और 'किस्सा हारून रशीद' लेकिन विचारों की दृष्टि से वे भारतीय हैं। मिस्र के बादशाह हारून रशीद को अपने पुत्र अजीज की मृत्यु पर संन्यास और योग लेने का निश्चय ठेठ भारतीय हैं। यहाँ तक कि सफेद अक्षरों की शब्दावली भी हिन्दी के निकट की मानी जा सकती है—

मिश्र के शहज़ाद
बसर के **आजिओ**
नूरः बारिथो चुलहम रोगितै ।
ला गयो हन्यास
छाँड़त जोगितै ।

---

१. मययन चोषतष तन गव इच काल
व्यलि तो ओस वूद मे च न तियः क्राल
दय ओस छाडान पानः जय ।
तुलना कीजिए—चिर समाधि में अचिर प्रकृति जब तुम अनादि तब केवल तम ।
अपने ही सब इगित से फिर हुए तरंगित सृष्ठि विषम ।।
निराला अनामिका, पृ० ३१ ।

२. यनः बूज़ुम कनः तपि हुन्द गुफ्तारः
ततः त्रोवुम कलिमै पूरम ज़ुनार
छेनः कैबस हेन अस बुतखानसः
लूट कुरुनम दीनस त ईमानस

महमूद गामी का बिम्ब-विधान उत्कृष्ट कोटि का है। नीचे उद्धृत मृत्यु के विम्ब में जहाँ एक ओर करुण भाव के यथार्थ रूप की पारदर्शी व्यंजना है तो दूसरी ओर आध्यात्मिकता का कलात्यक संकेत भी है—

रंगदार पखेरू बुलबुल ने,
जब पिंजणा अपना छोड़ दिया
मिट्टी का शरीर आवारा बना,
रंग छोड़ दिया, सब छोड़ दिया ।।[1]

महमूद गामी ने शृंगार रस से ओतप्रोत काव्य भी रचा है। उनके प्रेम को प्रखर रूप देने में अजमी नाम की युवती का बहुत बड़ा हाथ रहा है।[2] भावना के स्तर पर उनकी प्रेमिका का उद्गार विशुद्ध भारतीय संस्कृति के अनुकूल है—

चंदन लगा भर चाँदी के थाल
छिपके चमेली खिली खिले अनार
अप्सरा में रे क्या हुआ प्यार ?
मिट गये मेरे सब अरमान।
मदन मेरे मारो तुम वाण ।।[3]

रसूलमीर, स्वछिक्राल, कृष्ण जू राजदान और मक़बूलशाह क्रालवारी की काव्य-रचनाओं से कश्मीरी काव्य और भी गौरवान्वित हुआ है। कृष्ण जू राज़दान ने कृष्ण-काव्य को सरल भाषा और मधुर रूप में प्रस्तुत किया है। कृष्ण की बाँसुरी सुनने के लिए गोपियों के कान आतुर हैं फिर प्रेम विह्वलता क्यों न हो—

बाल कृष्ण छस प्रारान छ़ाल मारान इय, ना।
बंसरी छसकन ब दारान, शब्द बूजित मलना ।।

---

१. पंजरः मंज याम रंग
बुलबुल चूरि चुल।
म्यचि अंबर आवार गव
नाम रंग डुल।

२. शांगस नौगाम वुन्यू कत्यू प्रारय
अजमी दीदार हाव तम लो।

३. चूरि चन्दुन गलुम रूपः द्रूरे
हिमः प्यठ दान पोश शू द्रान
इवयाह गोग सुरगचि हूरे
रावरोवथम शूरेपान ।।

यही मस्ती स्वछिकाल के गीतों में है। यहाँ आध्यात्मिकता के साथ प्रेम की मस्ती है—

पूछा जब "बिन्दु कहाँ से आया ?"
बोले—"प्रेम की राह से पाया।"
कहा तब—"प्रेम का बिन्दु दिखाओ"
बोले—"रखोगे कहाँ बताओ।"

रसूलमीर शृंगार रस के कवि हैं लेकिन उनके गीतों में सूफियों की सी मस्ती है। मक़बूल शाह क्रालवारी ने मसनवी शैली में प्रबन्ध-काव्य "गुलरेज़" की रचना की है। वहाबपरे के काव्य में सुन्दर शब्द-चयन और शैली गठी हुई है। बीसवी शताब्दी में रामभक्ति पर कई रचनाएँ हुई हैं। नीलकंठ शर्मा, विश्वम्भरनाथ कौल, पंडित ताराचन्द ने क्रमशः शर्मा रामायण, विष्णूप्रताप रामायण और ताराचन्द रामायण की रचना की है।

अहमद बटवारि ने सूफी रहस्यवाद को काव्य का विषय बनाया है। एक स्थान पर उमर खय्याम का भी प्रभाव है—

मधुशाला में किसका निर्णय
मधुबाला के जब मधु प्याले !
कई हज़म कर सके न उनको
सिद्धों ने भर भर पी डाले ॥[1]

कबीर ने जो झीनी-झीनी चदरिया बुनी वैसी ही अहमद बटवारि में भी बुनी है। यह प्रतीक बहुत ही सुन्दर रूप में प्रयुक्त हुआ है—

प्राण चर्खे पर काल के तार।
चिंतन वस्त्र किया तैय्यार ॥[2]

अद्वैत की अनुभूति भी औपनिषदिक ढंग की है—

वुय छुस मैखाना पैमानय
मैं मधुशाला मैं ही प्याला

---

१. मैं खान फैसल द्युति कल वालय
कैंचन मय च्यत कै समदान
आरिफत मारिफत च्यव सबज प्यालव
लाले इ करयु आलव गव ॥

२. दम इन्द्रस तोसाम्य क्वतुये
गम सूतिन वोननय आव ॥

मास्टर ज़िन्दा कौल, गुलाम रसूल नाज़ की और प्रो० मुहीउद्दीन हाजिनी ने प्रायः प्रेम, धर्म और समाज परक कविताएँ लिखी है। लेकिन बीसवी शताब्दी में राष्ट्रीयता और क्रांति की उद्घोषणा अब्दुल अहद आज़ाद ने ही की है। यहाँ का प्रगतिशील आन्दोलन उत्तर भारत के शेष स्थानों से भिन्न होता हुआ भावना के स्तर पर समान है। आजाद युगान्तर कारी कवि हैं। उनका 'शिकवै कश्मीर' लोक काव्य बन गया है आज़ाद ने जनता की उमंगों और इच्छाओं को वाणी दी है। उन्होंने साम्प्रदायिकता पर प्रहार करते हुए हिन्दू-मुस्लिम एकता का संगीत छेड़ा है। गाँधी, सुभाष, ललितादित्य और बडशाह पर उसने लेखनी चलाई है। आजाद दासता से मुक्त रहने और निरंतर प्रगतिशील बनने के लिए प्रेरित करते हैं—

दास नहीं हूँ बंध जाऊँ,
जंजीरों हथकड़ियों में
जीवन का संगीत मिला
पथ में मंज़िल की घड़ियों में।[1]

महजूर राष्ट्रीय कवि के रूप में ही अधिक प्रसिद्ध है। कश्मीरी में राष्ट्रीय जागरण की चेतना से उनकी कविता स्पन्दित हो उठी है। इसी नवीनता के कारण यह कवि प्रगतिशील कहा जाता है। राष्ट्रीय चेतना का रूप विशुद्ध सांस्कृतिक आधार पर है। ऐसा लगता है जैसे श्रीमद्भगवत गीता की जरा-मरण से मुक्त आत्मा की पुकार हो—

शरद में झर जाते सब फूल
बसंत में फिर जीवन का ज़ोर।
मिला करता मर मर जीवन
मरण-भय छोड़ चलो इस ओर।[2]

---

१. गुलामः छुस न काह थान्यम
म्य पंजरन होकलन अन्दर
इवान छुम ज़िन्दगी हुन्द-सोज़
सफरन मंज़िलन अन्दर॥

२. गुलहरद : हरान होन्तः
वियः दुवारः कुरान दोर।
मरि मरि छ फेरान ज़िन्दगी
विसवास मरतुक त्राव॥

जिस समय राष्ट्रीय आन्दोलन जोरों पर था उस समय ऐसा कौन सा व्यक्ति था जो 'महजूर' के स्वर के साथ "समिथ वतन वतन परित, तरानै वतन परिव" मिलकर नहीं गाता था, घर बाजार सभी जगह यही स्वर गूँजा करते थे। लेकिन स्वतंत्रता के बाद जन तंत्र से उनका मोह-भंग हुआ। इस तथ्य की व्यंजना इस प्रकार की है—

गरीबों को क्या क्रांति के फल से मतलब ?
जहाँ एक दो चमके सूरज से जब तब।
जहाँ तारकों की सी समता नहीं है।
जहाँ देश, जनवाद विकसित नहीं जब ?[1]

वर्तमान युग के कश्मीरी साहित्य में दीनानाथ नादिम का प्रमुख योग-दान रहा है। नादिम भी प्रगति में आस्था रखते हैं, लेकिन उनकी प्रगति पूर्व से आभासित प्रगति का रूप है—

जो जनता के संग है वह आगे बढ़ा है।
जो पिछड़ा, बिना लक्ष्य थक कर खड़ा है ॥[2]

नादिम साहब ने कश्मीरी साहित्य को एक नवीन दिशा, नवीन विचार ही नहीं दिये अपितु नवीन शैली भी दी है। शैली की दृष्टि से कवियों के घने वन में उनका व्यक्तित्व देवदारु के सदृश है। नादिम के सहगामी रहमान राही भी प्रगतिवादी धारा में बहे हैं। वे शांति के नहीं अपितु क्रांति के समर्थक हैं।

दृष्टि वही जो हो असीम
हृदय वह जो उलझन में लीन

राही ने विचारों में ही क्रांति नहीं की बल्कि काव्य-रूपों में भी एक नये शिल्प को जन्म दिया है। राही ने मुक्त छंद का प्रवर्तन किया है। उनके काव्य में तुकबन्दी नहीं है फिर भी आन्तरिक लय मौजूद है। जहाँ नादिम

---

१. गरीबन म्यूल क्या ? तमि इंक्वाणुक,
अकिस दन दरजि यमि द्युत आफताबुक ;
बराबर तारकन हन्दि फआठि यकसान,
यलि फुलि कोम चकीजर लबे हिसाबुक ॥

२. अवागस सीऽथि यस गव म्युल सु ब्रौंट पोक।
वदन युस रूद मंजिलस बातनइ थोक ॥

साहब केवल प्रगतिवाद तक ही गये हैं वहाँ राही निरंतर प्रगतिशील हैं। उन्होंने नयी कविता के आयाम को भी अपने काव्य में फैलाया है और बहुत ही गहरी संवेदना के साथ युग-बोध-परक कविताएँ लिखी हैं। अमीन कामिल, मक्खनलाल बेकस, गौहर, गुलाम नबी खयाल, चमनलाल चमन तथा वासुदेव रेह से अभी कश्मीरी काव्य को बहुत कुछ मिलने की आशा है। है। मुझे विश्वास है कि कश्मीर की भावी कविता में नवीन अभिव्यक्ति का माध्यम, नया ढाँचा, नये छंद, नवीन भाव-बोध, नव युग-बोध, नवीन प्रतीक, नवीन बिम्ब-विधान वर्तमान युग मानस की जड़ता को तोड़ने में समर्थ होंगे और कश्मीर की कविता शेष भारत की कविता-धारा के साथ ही निरंतर एक ही भूमि पर प्रवाहित होती जायगी और परम्परा से पोषित अद्वैत सम्बन्ध को सुरक्षित रखेगी।

++++++++++++++++

ग्वरं‌न् वुनुनम् कुनुई व'चुन्
न्यंबरि दोपनम् अन्दर अंचन,
सुई गुव लंलि म्यु वाक् ति वंचुन्
तंवै म्यु ह्योतुम नंगै नंचन।

—लल्लेश्वरी

('गुरु ने मुझे केवल एक अमूल्य शिक्षा दी, बाह्य-जीवन को त्यागकर आन्तरिक तथ्य का मनन करना। उनकी शिक्षा को मैंने पूरे-रूप से ग्रहण किया और यही कारण है कि आज मैं नंगी नाचने लगी हूँ।')

* * *

कुलटा नारी, घिरा हुई आवाज, भ्रष्ट राजनीतिज्ञ, अयोग्य अध्यापक, मूर्ख मंत्री, धोखेबाज मित्र, कृतघ्न भाई अपने दोषों को दूसरों में बड़ी सुविधा से कल्पित कर लेते हैं और उनके गुणों को अपने में मान कर उनका प्रचार करते हैं।—**सम्पादक**

* * *

बैसाखियाँ

सोमनाथ कौल
अनुसंधित्सु

'बैसाखी' की यह भीड़
और ये मेले हैं
किन्तु हम अकेले हैं
हर जगह अकेले हैं।
इसलिए यार,
हमारी ये 'बैसाखियाँ' मत छीनो।
इन्होंने
मेरे अस्तित्व को
बेरहमी से छीला-कुरेदा है
जिसके दर्द को
मुख पर
सिंगार का मरहम लगाके
हँसते-हँसते झेलता आया हूँ,
पर क्या करूँ
ये मेरी प्यारी बैसाखियाँ जो हैं।
पर
इनकी यह मधुर पीड़ा
तुम्हारी सहानुभूति से
कहीं अच्छी है।
इन्हें छीनकर

क्या तुम
मेरा अपमान करना चाहते हो—
क्या तुम देखना चाहते हो
कि कैसे परकटा पक्षी
कुचले जाने पर
छटपटाता-तिलमिलाता है
फिर भी
टस से मस नहीं होता,
बस
नयनों से ही
मील पत्थर गिनता जाता है..............
कैसे मेरे
छालों पर छालों का रक्त-पीप
गंधाता है
या
तुम मेरी बैसाखियाँ तोड़कर
मुझे अज्ञात गहरे खड्ड में
सिर के बल गिराना चाहते हो
(जहाँ न मेरी ही कोई सुनेगा
न मैं हो किसी की सुनूँगा)
या
दूसरों की ही तरह
बिनोदार्थ
सहानुभूति के कुछ टुकड़े देकर
मेरी दशा
दारुण बनाना चाहते हो
शायद
तुम्हें अब मेरा भी नहीं
मेरी बैसाखियों का ही अस्तित्व
दिखता, खटकता है।
इसलिए मुझे तुम्हारी इस

सहानुभूति से अवृत्त
'मॉडर्न संस्कृति' की
घिनौनी खुशबू,
बार-बार कचोटती-सालती है।
अब तुम्हें एक समाचार देता हूँ
मेरा अस्तित्व, न अब
छीला ही जाता है
न कुरेदा ही जाता है, क्योंकि
यह इस्पात का अपूर्व यन्त्र जो बनता जाता है।

++++++++++++++++

यदि आप किसी दम्पति के विवाह करने के कारणों की सूची बनाएँ और फिर एक सूची उसके तलाक द्वारा विलग होने के कारणों की बनाएँ, तो आप पायेंगे कि दोनों सूचियों के अधिकांश कारण समान हैं।—**सम्पादक**

* * *

गोस्वामी तुलसीदास की लेखनी की शक्ति ने वाल्मीकि के मानव-राम को भगवान राम बना दिया। उन्हीं तुलसीदास ने अपने 'रामचरितमानस' में आद्योपान्त विभीषण के गुण गाये और उसे पवित्र करने का प्रयत्न किया, परन्तु आज भी वह विभीषण 'घर का भेदी' होने का कलंक अपने मुख से नहीं छुड़ा सका है। नारी के चरित्र से व्यभिचार की कालिमा और पुरुष के चरित्र से विश्वासघात का कलंक, इसी प्रकार, सरस्वती भी पोंछ नहीं सकती।

—**सम्पादक**

* * *

मानव मस्तिष्क की कल्पना की स्वाभाविक उड़ान सुख से सुख की ओर न होकर, आशा से आशा की ओर होती है।—**सेमुअल जॉनसन**

* * *

"कश्मीरी संख्यावाचक का उद्भव" तुलनात्मक अध्ययन

त्रिलोकीनाथ गंजू
प्राध्यापक, हिन्दी विभाग
कश्मीर विश्वविद्यालय

किसी भाषा के आदिम स्रोत को पहिचाननें के लिए कुछ-एक तथ्य उसमें अवश्य सुरक्षित रहते हैं, जिनके आधार पर उस भाषा का आदिम कलेवर जाना जा सकता है। प्रथमतः इनमें संबन्धुवाचक शब्द स्रोत, सर्वनाम-परक शब्दों का प्रयोग और संख्यावाचक शब्द आते हैं। इस त्रिकोण में बहुत कम विलोप एवं परिवर्त्तन आता है। 'वितस्ता' के अंक ६ (१९७०) एवं ८ (१९७३) में "कश्मीरी सर्वनामों का उद्भव", "कश्मीरी भाषा के संबन्धुवाचक"; के द्वारा इस तथ्य को पूर्णरूपेण स्पष्ट किया गया कि ये मूलतः छान्दस् एवं संस्कृत से उद्भूत शब्द है। दरद विभाषा से इसका किंचित भी साम्य नहीं है—जैसा कि सर ग्रियर्सन[1] की भ्रान्त धारणा तर्क प्रस्तुत कर चुकी है। इन तथ्यों का ग्रियर्सन ने कहीं भी उल्लेख नहीं किया है। उन्होंने एक शिथिल एवं लड़खड़ाता तर्क प्रस्तुत करके यह घोषणा कर दी कि 'शब्द राशि' किसी भाषा का आदिम स्रोत व्यक्त नहीं करा सकती है। पर वे भूल गये कि शब्द कलेवर का काम करते हैं और क्रिया-संपन्न कारक उसकी आत्मा का आह्वान करते हैं। ये दोनों ही कश्मीरी के अपने हैं। इसी प्रकार उनका मत कश्मीरी संख्यावाचक के प्रति भी रहा है। जिन्हें वे दारदीय एवं ईरानी[2] भाषा द्वारा प्रभावित मानते हैं। इस शोध-लेख में यह देखने का प्रयत्न किया जाएगा कि कश्मीरी

---

१. ग्रियर्सन : भाषा सर्वेक्षण भाग ८, विभाग २, भूमिका।
२. ग्रियर्सन : भाषा सर्वेक्षण—"कश्मीरी का वर्गीकरण" भाग ८ वि० २, पृ० २४७।

भाषा के संख्यावाचक एवं सांख्येय कहाँ तक दारदीय, विशेषत: श्रिण्या (शिना) से उद्भूत हुए हैं और ग्रियर्सन कितनी ईमानदारी से इस तथ्य को स्पष्ट कर चुके हैं।

भारतीय विद्वानों का जो दृष्टिकोण कश्मीरी भाषा के प्रति रहा है, वह साकार ग्रियर्सन का मत है, जिसे वे हेरफेर करके प्रस्तुत करते हैं। अत: यह अन्धानुकरण से अधिक कुछ नहीं। यह एक असंगति की फिसली विसंगति ही है। ग्रियर्सन का लोहा मानने वाले विद्वज्जनों की सेवा में यह अकिंचन ग्रियर्सन द्वारा प्रस्तुत कुछ एक कश्मीरी वाक्यों को प्रस्तुत करके उनकी अर्धविक्षिप्त कश्मीरी भाषा का साक्ष्य देना अपना प्रमुख कर्त्तव्य समझता है।

ग्रियर्सन द्वारा प्रस्तुत कश्मीरी वाक्य[1] :—

(क) च़ोनु नाव क्या छुह (तुम्हारा नाम क्या है)

उक्त वाक्य की संयोजना एवं गठन एकदम अशुद्ध है क्योंकि इस कश्मीरी भाषा में पहले कर्ता फिर क्रिया (सहायक) और विषय अन्त में आएगा, अत: वाक्य का शुद्ध रूप यह है "च़ क्या छुय् नाव"।

ग्रिय० कश्म०→च़्योनिस मलयिसन्दिस गर अन्दर कूति नेचिव छिह। (तुम्हारे पिता के घर में कितने पुत्र हैं।)

यहाँ ग्रियर्सन ने वाक्य के पीछे प्रश्नवाचक लगाया है। कश्मीरी वाक्य का गठन होना चाहिए था—

शुद्ध कश्म०→कॉत्या नेचिव छि च़निस् मॅलिसिन्दिस् गरस् मंज़ ?

यदि वक्ता का आशय मात्र पुत्र संख्या जानना ही है, तो वाक्य का गठन इस प्रकार से होगा—

च़निस् मॅलिस् कॉत्या नेचिव्य छिअ् ?
(तुम्हारे पिता के कितने पुत्र हैं ?)

ग्रिय० कश्म०→बोह छुस् अज सेठाह पकुमोतु
(मैं आज बहुत दूर चला।)

शुद्ध कश्म०→बअ् पकुस् अज सेठाह्।

---

१. ग्रियर्सन : भाषा सर्वेक्षण भाग ८ वि० २, पृ० २६ (दारदिक)।

सोतर/ श्रिण्या /सताय/ कश्म० /सदाह/ ; पुरानी राज०[१] /सतरह, सत्तर/, हार्नली[२] /सत्तरह, सत्रह/ मेवाड़ी[३] /शतरा हतरा/ ।

यहाँ भी श्रिण्या और कश्मीरी में कोई साम्य नहीं है।

संस्कृ० /अष्ठदश/ (अठारह) ; पं० /अठाराँ/ गुज० /अढार/ महा० /अठरा/ बं० /आटअ्/ अस० /ओठर, ओठॉरॉ/ ओ० /ऑठॉरॉ/ ; सिं०/अढरहाँ, अर्ढहाँ/ श्रिण्या /अष्टाय्/ कश्म० /अरदाह/, पुरानी राज०[४] /अठार, अढ़ार/ ; हार्नली[५] /अट्ठरह, अट्ठारह/ ; मेवाड़ी[६] /अठारा/ प्राकृत[७] /अट्ठारस अट्ठारह/ ।

श्रिण्या विभाषा का सम्बन्ध यहां भी कश्मीरी से नितान्त भिन्न दिशा का है। इस प्रकार से श्रिण्या विभाषा में /अंष्ठ/ और /अष्टाय/ दोनों में ध्वनि चिरंतनता का संरक्षण हुआ है।

संस्कृ० /उनविंशति/ अथवा /एकोनविंशति/ (उनीस) ; पं० /उन्नी/ गुज० /ओगणीस/ महा० /एकोनीस/ सिं० /उणवीह/ बं० /ऊनिश/ ; अस० /ऊनैच, ऊनोइस/ ओ० /उणिशि/ श्रिण्या /कुनबीइ्/ कश्म० /कुनवूह्/ पुरानी राज०[८] /एगूणवीस, एगूणविंश, अपगुणविंशति, ओगणीस/ हार्नली[९] /उनवीसइ, उनवीसा, कूनवीसा/ प्राकृतों[१०] में /एगूणवीस, अउणवीसइ, गुन्नीस/ कश्मीरी की स्थिति ; हार्नली द्वारा प्रस्तुत /कूनवीसा/ से निकटतम संपर्क की है। श्रिण्या में अन्त ध्वनि /श/ है। परं यहाँ तक श्रिण्या संख्यापरक पर कोई विशेष ईरानी प्रभाव नहीं है।

संस्कृ० /विंशति/ (वीस) ; पं० /वीस/ ; गुज० /बीस/ महा० /बीस/ ; सिं० /वीह/ ; बं० /कुड़ि/ ; अस० /बिच/ ; ओ० /कोडिए/, श्रिण्या /बीह/

---

१. डॉ० तेस्सितोरी : पुरानी राज०, पृ० १०० ।
२. हार्नली : ई० ग्रै० हि० लैं० पैरा ३५७ ।
३. केलाग : ग्रै० ऑफ हि० लैं० १४८ ।
४. डॉ० तेस्सितोरी : पुरानी राज०, पृ० १०० ।
५. हार्नली : ई० ग्रै० हि० लैं० पैरा ३५७ ।
६. केलाग : ग्रै० ऑफ हि० लैं०, पृ० १४८ ।
७. पिशल : प्रा० भा० व्या० पृ० ६५८ ।
८. डॉ० तेस्सितोरी : पुरानी राज०, पृ० १०० ।
९. हार्नली : ई० ग्रै० हि० लैं० पैरा ३५७ ।
१०. पिशल : प्रा० भा० व्या०, पृ० ६५९ ।

कश्म० /वूह/ पुरानी राज०[1] /वीस, बीस/ हार्नली[2] /बीसा, वीसइ/ प्राकृत[3] /बीसइ, बीसइं, बीसई/ ।

बीस के आगे श्रिण्या (शिणा) भाषा में जोड़ने की सामान्य-प्रवृत्ति कश्मीरी सहित समस्त भारतीय आर्य भाषाओं के संख्यावाचकों से भिन्न पद्धति से प्रवृद्ध हुई है। भारतीय आर्य भाषाओं में किसी भी दशक के पूर्व बोधक संख्या का प्रयोग प्रथमतः होता है और दशक बाद में जुड़ता है :

(क)	कश्म०	/अकंबूह/	(इक्कीस)
(ख)	प्राकृत[4]	/एक्क वीसा/	
(ग)	राज०[5]	/एक वीस/	
(घ)	पिंगल[6]	/एक्क बीसइ/	
(ङ)	मेवाड़ी[7]	/अकीश/	
(च)	प्राकृत[8]	/एगूणवीसा/	
	प्राकृत	/एगवीसा/	

परं श्रिण्या (शिणा) भाषा में दशक प्रथमतः आता है और बोधक संख्या उत्तर में आती है :—

श्रिण्या :→/बीगं—इक्/ (२१) ; /बीगं—दु/ (२२) ; बीगं—चे/ (२३) आदि ।

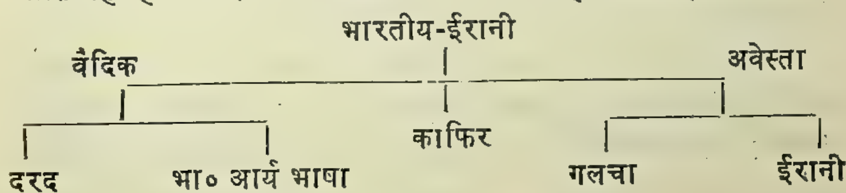
ईरानी भाषा में भी प्रथमतः दशक आता है और बोधकसंख्या उत्तर में आती है :—

ईरानी :→/बिस्त-वं-यक्/ (२१) /बिस्त-वं-दु/ (२२) आदि ।

परं कश्मीरी भाषा ठेठ भारतीय आर्य पद्धति के समान ही चलती है। यदि सूक्ष्म निरीक्षण किया जाय तो बीस तक श्रिण्या विभाषा में भारतीय परंपरा का अनुसरण है और इसके उपरान्त उसका मुख ईरानी

१. डॉ० तेस्सितोरी : पुरानी राज०, पृ० १०० ।
२. हार्नली : ई० ग्रै० हि० लैं० पैरा ३५७ ।
३. पिशल : प्रा० भा० व्या० ६६० ।
४. धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी भाषा का इतिहास, पृ० २६५ ।
५. डॉ० तेस्सितोरी : पुरानी राज०, पृ० १०० ।
६. प्राकृत पिंगला सूत्राणि १/८७ ।
७. केलाग : ग्रै० ऑफ हि० लैं०, पृ० १५१ ।
८. डॉ नेमिचन्द्र : अभिनव प्राकृत व्याकरण, पृ० २११ ।

को ओर झुका है। इससे जा तथ्य आर० वी० शॉ[1] ने प्रस्तुत किया है, बहुत सार्थक लगता है। और इस मत की पुष्टि बुडलिफ[2] भी करते हैं। वास्तव में इन दोनों व्यक्तियों का कार्य प्रशंसनीय है, इनकी कृतियों को आधार मानकर ही ग्राहम बेली ने अपने "शिणा व्याकरण" और ग्रियर्सन ने भाषा सर्वेक्षण का आठवां भाग, विभाग दो का शिलान्यास किया है। यद्यपि श्री लिचनर भी इस कक्षा में आते हैं परं उन्होंने भाषा को देखा है भाषात्मक भूगोल की उपेक्षा की है। श्री शॉ का तर्क है कि "गलचा अथवा घालचा भाषा की समानता दरद भाषाओं में देखकर ऐसा आभास होता है कि अवश्य ही दरद का स्रोत गलचा भाषा है परं ध्वन्यात्मकता में दरद भारतीय आर्य भाषा की सर्वप्रथम शाखा रही है।" अतः गलचा अथवा ईरानी इसका स्रोत नहीं है और इसका समाधान इस प्रकार से हो सकता है।



धीरे-धीरे इन तीनों भाषाओं का एक संधिस्थल आया होगा और काफिरी गलचा से अधिक प्रभावित रही होगी, यद्यपि इसकी स्थिति भारत-ईरानी के मध्य में है और कालान्तर में काफिरी और दरद का सन्निकर्ष हुआ दिखाई देता है। जिसके फलस्वरूप दरद के भारतीय आर्य शाखा से यातायात के संपर्क विछिन्न हुए होंगे। स्वाभाविक है इसका अधिक संपर्क काफिरी वर्ग से रहा होगा यद्यपि इसकी शब्द संपदा काफिरी से अधिक भारतीय आर्य शाखा की ओर झुकती है। इससे मुझे अपने शोध की सूत्र-बद्धता वैज्ञानिक एवं ठोस प्रतीत होती है क्योंकि इसका प्रत्यक्ष प्रमाण श्रिण्या भाषा की 'विंशति' के उपरान्त संख्या भी सिद्ध करती है क्योंकि सभ्यता और संस्कृति के उत्तरोत्तर विकास के साथ-साथ संख्या का भी प्रचलन प्रवृद्ध होने लगा और इस युग तक आते-आते दरद के मूलस्रोत से भाषात्मक एवं प्रजननात्मक संबन्ध विछिन्न हो चुके थे। अतः यदि यह

१: आर० वी० शॉ : आनन्द घलचा लैंग्वेजेज़ भाग १, पृ० १३६-४७ जनरल ऑफ रायल एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल (१८७६)।

२. बुडलिफ : डाइलेक्टस ऑफ हिन्दूकुश (रा० ए० सो० भाग १७ (लण्डन १८८५)

काफिरी की ओर झुकी तो कोई भी आश्चर्य नहीं है। इसमें धार्मिक प्रभाव भी अतिशय रूप से एक प्रमुख कारण बना होगा; क्योंकि भारत का पश्चिमोत्तर भू-भाग बाद में इस्लाम के प्रभाव में आ गया था। अतः इतिहास और भूगोल के परिप्रेक्ष्य में इसका समाधान अभी भी अपेक्षित है। अपने शोध में इस प्रकार के कई तथ्य मेरे सामने आते हैं जिनके आधार पर मैं रूप रूपेण यह कह सकता हूँ कि ग्रियर्सन ने भाषा सर्वेक्षण के आठवें भाग के दूसरे विभाग में एक भयानक भ्रान्ति को जन्म दिया है। न वह श्रिण्या भाषा और भाषात्मक ध्वनियों को समझ सके हैं, न कश्मीरी भाषा को ही। और हम गतानुगत का अनुसरण करके एक अन्याय को तर्क-संगत मानकर उसकी दुहाई देते हैं।

भारतीय संख्या-वाचकों एवं कश्मीरी का क्रम दशक की क्रमांकता में इस प्रकार से चलता है—

संस्कृ० /त्रिशत/ (तीस), पं० /तीस्/; गुज० /त्रीस्/, महा० /तीस/ सिं० /टीह/ बं० /तिरिश/; अस० /त्रिच्, त्रिस/ ओ० /तिरिश, तिरिस्/ श्रिण्या /बीग-दे, त्रीइ/ कश्म० /त्रूह/; पुरानी राज[1] में /त्रीस्, तीसा/ आदि रूप मिलते हैं। हार्नली[2] /तीसा, तीसआ/ पिंगल सूत्रों में /तीसा/ मिलता है। कश्मीरी प्राकृत ग्रन्थ 'महानय प्रकाश'[3] में कारकान्त /त्रीहि/ प्राप्त है।

कश्मीरी भाषा में विंशति के दशक में अन्त में /वूह/ और त्रिशत के दशक में अन्त में /त्रूह/ लगता है:—

विंशत	त्रिशत
/अक्वूह/ (२१)	/अकत्रूह्/ (३१)
/ज़ंतोवूह/ (२२)	/द्वय्त्रूह्/ (३२)
/त्रेंवूह/ (२३)	/तेंइत्रूह्/ (३३)

संस्कृ० /चत्वारिंशत्/ (चालीस); गुज० /चालीस/ महा० /चालीस/ सिं० /चालीस/ बं० /चल्लिस/ या /चोल्लिश/; अस० /चल्लिश, सोल्लिस/ ओ० /चालिश, चालिस/ श्रिण्या /दिबु/; कश्म० /चतंजीह/ पुरानी राज[4]

१. डॉ तेस्सितोरी : पुरानी राजस्थानी, पृ० १०१।
२. हार्नली : ई० ग्रै० हि० लैं० पैरा ३५७।
३. शतिकण्ठ : 'महानय प्रकाश' अध्याय १६४।
४. डॉ तेस्सितोरी : पुरानी राज०, पृ० १०१।

/च्यालीस/ **प्राकृत**[1] /चत्तालीस/ **विवाह पन्नति**[2] /चत्तलीसा/ **अर्धमागधी**[3] /चत्ता/।

कश्मीरी प्राकृत में प्रायः /ल/ ध्वनि /ज/ में बदलती है। अतः प्राकृत का /चत्तालीस/ कश्मीरी प्राकृत में /चताजीस/ ; इसके अतिरिक्त कश्मीरी में /श/ ध्वनि /ह/ में परिवर्तित होती है। इस प्रकार से प्राकृत /चत्तालीह/ /चतंजीह/ हुआ है। इस /चत्वारिंशत/ के दशक में कश्मीरी में /जीह/ अन्त में आता है :—

/अकतंजीह/ (४१)
/द्वयतंजीह्/ (४२)
/तेइतंजीह्/ (४३)

यहाँ भी श्रिण्या विभाषा से कश्मीरी भाषा का कोई भी उद्भूत या सह-विकासात्मक संबन्ध नहीं है।

संस्कृ० /पञ्चाशत्/ (पचास) ; **पं०** /पंजाह/ ; **गुज०** /पवास/ ; **महा०** /पन्नास/ ; **सिं०** /पंजाहु/ **बं०** /पञ्चाश, पाञ्चाश्/ **अस०** /पन्चास, पान्सास/ **ओ०** /पचाश/ **श्रिण्या** /द्युब्युगं-दै/ **कश्म०** /पंचाह/ ; **पुरानी राज०**[4] /पँचास/ **प्राकृत**[5] /पणासा, पन्ना/।

यहाँ भी उल्लेखनीय यह है कि कश्मीरी में प्रायः /श/ ध्वनि /ह/ में, और अन्य प्राकृतों में /स/ में वदलती है परं श्रिण्या विभाषा का क्रम अभारतीय एवं (जैसे भारत में प्रचलित पुरानी 'वीसी'—२० के विभागों से गिनने की पद्धति) जोड़ पद्धति की व्यवस्था है :—"द्वि×विंशति+दश" अर्थात् = "द्युब्युग दै"

(२×२०+१०=५० जैसे 'दो बीसी दस')

यद्यपि /ग/ ध्वनि श्रिण्या विभाषा में "और" का बोधक है। परं मेरा अपना तर्क है कि यह /गुणन/ शब्द का अवशेष है।

कश्मीरी में इस दशक की अन्तस्थ स्थिति नियमानुसार यह होनी चाहिए थी :—/अकपंजाह/ परं कश्मीरी में /प/ ध्वनि प्रायः /व/ में बदलती

---

१. पिशल : प्रा० भा० व्या०, पृ० ६६१।
२. विवाहपन्नति—वनारस १६३२।
३. डॉ तेस्सितोरी : पुरानी राजस्थानी, पृ० १०१।
४. वही।
५. पिशल : प्रा० भा० व्या०, पृ० ६६२।

है :—पथ=कश्म० /वथ/ अतः दशक की अन्तता इस प्रकार से चलती है :—

/अकवंज़ाह/ (५१)
/दुवंज़ाह/ (५२)
/त्रिवंज़ाह/ (५३)

श्रिण्या विभाषा में /५१, ५२, ५३/ का क्रम इस प्रकार से चलता है :—

२×२०+११=५१ /ध्युब्युग् अकाइ/
२×२०+१२=५२ /ध्युब्युग् बाइ/

संस्कृ० /षष्टि/ (साठ) ; पं० /सठ/ गुज० /साठ/ महा० /साठ/ सिं० /सठि/ ; बं० /षाट् शाट्/ अस० /षठि हाठि/ ओ० /षाठिए/ श्रिण्या /त्रेब्यू/ ; कश्म० /शेठ/ पुरानी राज०[1] /साठ्टि, सट्ठी, छट्ठि/ अर्ध मागधी[2] /सट्ठि, सट्ठि/ प्राकृत[3] /सट्ठ/ भोजपुरी[4] /साठि/ ;

यहाँ भी श्रिण्या और कश्मीरी भाषा में महान अन्तर है :—

३०×२=६० अर्थात्→/त्रेब्यू/ (६०)
३०×२+१=६१ अर्थात्→/त्रेब्यूग एंक/ ६१)
३०×२+२=६२ अर्थात्→/त्रेब्यूग दु/ (६२)

परं कश्मीरी का /शेठ्/ संस्कृत /षष्टि/ का ही अपभ्रंश रूप है जो बंगला के निकट है। यहाँ /शेठ्/ में /श/ ध्वनि सुरक्षित रही है परन्तु दशक के क्रम में इसकी अन्तता असमीया भाषा के समान /हाठि/ कश्म० /हंठ्/ प्रवृद्ध होती है :—

/अकहंठ/ (६१)
/दुहंठ/ (६२)
/त्रिहंठ/ (६३)

संस्कृ० /सप्तति/ (सत्तर) ; पं० /सत्तर/ गुज० /सित्तेर/ महा० /सत्तर/ सिं० /सतर/ बं० /सत्तर, शॉत्तार/ अस० /सत्तर, हॉट्टॉर/, ओ० /सॉतुरि,

---

१. डॉ० तेस्सितोरी : पुरानी राज०।
२. पिशल : प्रा० भा० व्या०, पृ० ६६२।
३. धीरेन्द्र वर्मा : हि० भाषा का इतिहास, पृ० २७७।
४. केलाग : ग्रै० ऑफ हि० लैं०, पृ० १५०।

सतुरि/ श्रिण्या /त्रेव्युग दै/ कश्म० संतथ्/; प्राचीन राज०[1] /सत्तरि/, प्राकृतों में[2] /सत्तरि, सयरि, सत्तरि/ आदि रूप मिलते हैं। मेवाड़ी[3] /शतर/।

यहाँ भी श्रिण्या भाषा में वही क्रम चलता है :—

३०+३०+१०=७० /त्रेव्युग दै/

३०+३०+११=७१ /त्रेव्युग अकाड़/

परं कश्मीरी प्राकृत में भारतीय आर्य भाषाओं के समान ही स्वरूप स्थिति हुई है, केवल अघोष अल्पप्राण /त/ का अघोष महाप्राण /त्थ/ हुआ है। इस दशक में भी अन्ततः /सतथ/ के संलग्नता से स्वरूप स्थिति बनती है :—

कश्म० :— /अकसतथ्/ (७१) ;
/दुसतथ्/ (७२) ;
/त्रिसतथ्/ (७३) ;

संस्कृ० /अशीति/ (अस्सी) ; पं० /अस्सी/ गुज० /एशी/ महा० /ऐंशी/, सिं० /अस्सी/, बं० /आशी/ अस० /आही, आशी/ ओ० /आशि/, श्रिण्या /चरब्यू/ कश्म० /शीथ्/ पुरानी राज०[4] /आइसि/ ; प्राकृत[5] /असीइ/ अन्य प्राकृतों में[6] /असीई, असीइं/ मेवाड़ी[7] /अशी/।

यहाँ भी श्रिण्या विभाषा में जोड़ एवं गुणन पद्धति की परिपाटी है :—

अग्रिम क्रम :→ ४×२०=८० (चरब्यू)
४×२०+१=८१ (चरब्यू एंक)
४×२०+२=८२ (चरब्यू दु)

कश्मीरी में यहाँ भी अघोष अल्पप्राण /त/, अघोष महाप्राण में बदला है। इस दशक में भी अन्ततः /शीथ्/ की संलग्नता से स्वरूप-स्थिति बनी है :—

---

१. डॉ० तेस्सितोरी : पुरानी राज०, पृ० १०२।
२. पिशल : प्रा० भा० व्या०, पृ० ६६२।
३. केलाग : ग्रै० ऑफ हि० लैं० पृ० १४८।
४. डॉ० तेस्सितोरी : पुरानी राज०; पृ० १०२।
५. धीरेन्द्र वर्मा : हि० भा० का इति०, पृ० २७७।
६. पिशल : प्रा० भा० व्या०, पृ० ६६३।
७. केलाग : ग्रै० ऑफ हि० लैं०, पृ० १४८।

कश्म० /अकंशीथ्/ (८१)
/द्वंय्शीथ/ (८२)
/त्रंय्शीथ्/ (८३)

संस्कृ० /नवति/ (नब्बे) ; **पं०** /नब्वे/ **गुज०** /नेवुं/ **महा०** /नव्वद/ **सिं०** /नवे/ **बं०** /नब्बई, नॉब्बाई/, **अस०** /नब्बै, नॉब्बोइ/ **ओ०** /नबे, नॉबे/ **श्रिण्या** /चरब्यूग-देइ/ **कश्म०** /नमथ्/, **पुरानी राज**[1] /णाउइ, न उई/, **मेवाड़ी**[2] /नेउवै/ **भोजपुरी**[3] /नवे/ ; **प्राकृत**[4] /नउई/ **प्राकृत**[5] नव्वए ।

यहाँ भी श्रिण्या संख्यावाचक में जोड़ और गुणन की पद्धति का क्रम है :—

४×२०+१०=९० अर्थात् /चरब्यूग-देइ/
४×२०+११=९१ „ /चरब्यूग-अकाइ/
४×२०+१२=९२ „ /चरब्यूग-बाइ/
४×२०+१३=९३ „ /चरब्यूग-त्रौय/

कश्मीरी में अन्तस्थ ध्वनि स्पर्श-ओष्ट में बदली है शेष इस दशक में भी /नमथ्/ अन्ततः संलग्न रहती है ।

कश्म० :— /अकंनमथ्/ (९१)
/दुनमथ्/ (९२)
/त्रिनमथ् (९३)

संस्कृ० /शत/ (सौ) ; **पं०** /सौ/ ; **गुज०** /सो/, **महा०** /शंभर, शेकड़ा/, **सिं०** /सौ/ ; **बं०** /श, शॉ/ **अस०** /एश, ॲहॉ/ **ओ०** /शहे, सॉटे/ **श्रिण्या** /शल/ **कश्म०** /हथ/ ; **पुरानी राज०**[6] /सउ, सो, सइँ/ **प्राकृत**[7] /सत, सय/ तथा /सआ, सअं/ **प्राकृत**[8] /सअ, सय, सद, शद/ **मेवाड़ी**[9] /शो, शेकडो/ **कन्नौजी**[10] /सै/ **अन्य रूप**[11] /सल/

---

१. डॉ० तेस्सितोरी : पुरानी राज०, पृ० १०२ ।
२. केलाग : ग्रै० ऑफ हि० लैं० १४८ ।
३. वही, पृ० १५० ।
४. पिशल : प्रा० भा० व्या०, पृ० २७८ ।
५. धीरेन्द्र वर्मा : हि० भा० का इतिहास, पृ० २७८ ।
६. डॉ० तेस्सितोरी : पुरानी राजस्थानी, पृ० १०२।
७. डॉ० धीरेन्द्र वर्मा : हि० भा० का इतिहास, पृ० २७८ ।
८. पिशल : प्रा० भा० व्या०, पृ० ६६४ ।
९. केलाग : ग्रै० ऑफ० हि० लैं०, पृ० १४८ ।
१०. वही, पृ० १५१ ।
११. वही ।

ग्रिय० कश्म०→म्यनिस पॅतरसुन्दिस् नॅचविस तमिसञ्ज़ॅ बॅनॅसूत्य
नेथर करमुत।
(मेरे चचेरे भाई ने उसकी बहिन से शादी की है।)
शुद्ध कश्म०→म्यॅञ् पितुरि बॅाय छुअ् तमिसून्ज़ि बेनिसूत्य् नेथुर
कॅारमुत।
ग्रिय० कश्म०→मॅ छुह लोयुमॅात तॅसन्दिस नेचिविस वाहरियाव
कमचवसूत्य।
(मैंने बहुत से कोड़ों से उसके बेटे को मारा।)
शुद्ध कश्म०→मॅ लोय तमिसून्दिस् नॅचिविस् कम्चव् सूत्य।
ग्रिय० कश्म०→तसून्दबोय छुह तसिञ्ज़ि बॅनिखोतु थॅाद।
(उसका भाई उसकी वहिन से लंबा है।)
शुद्ध कश्म०→तमिसून्दबोय छुअ् तमिसुञ्ज़ि बॅनिखॅातॅ थोदुय्।

उक्त वाक्यों में कश्मीरी ध्वनियों का स्पष्ट श्रवण-ग्राह्य हुआ ही नहीं है। माना विदेशी होने के कारण ऐसा संभव नहीं हो सका पर वाक्यों के गठन को देखकर ग्रियर्सन के कश्मीरी भाषा के ज्ञान की सारी गरिमा चूर-चूर हो जाती है। इस प्रकार की असंगतियों का ब्योरा ग्रियर्सन के 'कश्मीरी खण्ड' पर एक स्वतंत्र महाभाष्य हो सकता है जो यहाँ हमारा उद्देश्य नहीं है। मैं केवल भारतीय विद्वानों का ध्यान इस ओर दिलाना आवश्यक समझता हूँ कि ग्रियर्सन का कथन कदापि ब्रह्मवाक्य नहीं है। इस शोध-पत्र में, ग्रियर्सन की इस धारणा का स्पष्ट पर्यावलोचन होगा कि क्या वास्तव में कश्मीरी संख्या-परक दरद से निकले हैं? इस तथ्य के फलस्वरूप मैंने उनकी श्रिण्या (शिना[1]) भाषा को भी साथ-साथ लिया जिससे तुलना में कलेवर स्पष्ट हो जाय।

---

१. जिस शिना भाषा के साथ, अथवा जिससे उद्भूत वे कश्मीरी को मानते हैं उस भाषा के नाम का स्पष्ट उच्चारण भी ग्रियर्सन नहीं पकड़ सके हैं। शुरू में वे इसे **'शीना'** लिखते आए वाद में जव ग्राहम बेली ने पत्र द्वारा उन्हें सूचित किया कि यह **'शिना'** है (भाषा सर्वेक्षण भाग ८, वि० २, फुटनोट, पृ० १५०) तो **'शिना'** लिखा। पर ग्राहम वेली स्वयं अन्धेरे में रहे हैं और उन्होंने इसका उच्चारण **'शिणा'** लिखा है (ग्राहम वेली—शिणा व्याकरण) वास्तव में इसकी स्पष्ट ध्वनि **'श्रिण्या'** है जिसका अर्थ है सुनने के योग्य, जो वस्तुतः 'श्रवण' का विकृत रूप है।

संख्या परक शब्द :—

संस्कृत—एक/ **पंजाबी**—इक्क/ **हिन्दी**—एक/
सिन्धी—हिकु/ **गुजराती**—एक्/ **बंगला**—ॲक, एक्/
ओड़िया—एकाँ/ **असमीया**—ॲक/ **महाराष्ट्री**—एक्/
श्रिण्या (शिना)—एंक/ **कश्मीरी**—अख्/

निस्संदेह कश्म० /अख्/ असमीया और बंगला के निकट आता है। हिन्दी भाषा में भी /ए/ ध्वनि कभी-कभी /अ/ में बदलती है :—संस्कृत /एकल /हिन्दी/ अकेला/ (अर्थवत्ता समान ही है) प्राकृतों[1] में /इक्क, एक्व, एग/ पिशल महोदय ने /ऍक्व/[2] रूप भी दिया है जो /अ/ सन्धि स्वरता के निकट है। यही स्थिति कश्मीरी भाषा में भी आई है, अर्थात् यह हो सकता है कि सन्धि स्वर होने के कारण भी यह संभव हुआ हो ; परं दारदीय से इसकी ध्वन्यात्मकता एकदम पृथक है।

संस्कृ०/द्वि/ ; **हि०** /दो/ ; **पं०** /दो/ ; **गुज०** /बे/ ; **महा०** /दोन्/ ; **सि०** /ब/; **बं०** /दुइ/; **ओ०** /दुइ/; **असा०** /दु/; **श्रिण्या (शिना)**[3] /दू़/; **कश्म०** /ज़'/[4]।

कश्मीरी /ज़'/ आधुनिक जर्मन के समान ध्वन्यात्मकता देता है। जर्मन /ज़ाइ/ ; परं इस समानता पर अधिक बल दिए विना ही इसका मूल स्रोत ही हम लेंगे।

संस्कृ० /युगल, युग्म, योग, यामल/ से ही **कश्मीरी** /ज़'/ ध्वनि की उत्पत्ति हुई होगी, क्योंकि भारतीय भाषाओं में भी /य/ ध्वनि /ज/ में बदलती है, अतः कश्मीरी में भी इसीका अनुक्रमण रहा है। भारतीय आर्य प्राकृतों में संस्कृत /युगल/ का /जुगल/[5] होता है। इसी से संपन्न आधुनिक हिन्दी का /जोड़ी/ शब्द है। जिसका कश्मीरी प्राकृत में /ज़ूरि/ (जोड़ी) रूप उपलब्ध है। अन्ततः प्रयत्नलाघव के कारण आधुनिक /ज़'/ स्थिति हुई है। कश्मीरी इतिहास के नवीं शताब्दी के सीमान्त पर शतिकण्ठ

१. नेमिचन्द्र : अभिनव प्राकृत व्याकरण, पृ० २०७।
२. पिशल : प्राकृत भाषाओं का व्याकरण पैरा ४३५।
३. ऊ़ नातिदीर्घ।
४. /ज़/ सघोष, अल्प प्राण, दन्त मूलीय, स्पर्श संघर्षी।
५. पिशल : प्राकृत भाषाओं का व्याकरण पैरा ४३६।

ने प्रथम कश्मीरी प्राकृत की रचना "महानय प्रकाश"[१] में /जू/ का प्रयोग /द्वि/ के लिए किया है। उन्होंने तांत्रिक सिद्धान्त के "लोहितमद बिन्दू जू भिन्ने" के उपलक्ष्य में /जू/ (दो) का प्रयोग किया है। परं आधुनिक प्रयोग में /ज'/ ही है। कश्मीरी भाषा में /द्वि/ का भी प्रयोग प्रचुरता से होता है।

संबन्धकारक **कश्म०** /दोन/ **संस्कृ०** /द्वयो:/
कश्म० /दोड्मिस्/ **संस्कृ०** /द्वितीयतम (स्य)/
कश्म० /दोन्वैय/ **संस्कृ०** /द्वयो एव/

इसी प्रकार से संख्या शब्दों में भी—

कश्मीरी	**संस्कृत**
/द्व्यत्रुह/	/द्वात्रिंशत्/
/द्व्यतंजी/	/द्वाचत्वारिंशत्/
/दुवंज़ा/	/द्वापञ्चाशत्/
/दुहोट/	/द्वाषष्टि/
/दुसंतथ्/	/द्वासप्तप्ति/
/दुयिशीथ्/	/द्वयशीति/
/दुनमंथ्/	/द्वानवति/

कश्मीरी के /दोंन्/ (दो) के प्राकृत के समान ही विभिन्न स्वरूप बनते हैं।

कश्म० /दोन् मनोशत्/ **प्राकृ०** /दोन्निमनुश/[२] **संस्कृ०** /द्वौ मनुष्यौ/
कश्म० /दोन सुहन/ **प्राकृ०** /दुन्नि सीहा/ **संस्कृ०** /द्वौ सिंहौ/

प्राकृतों में भी कश्मीर के समान ऊष्म ध्वनि मिलती है :—

कश्म० /दोन्ह/, **प्राकृ०** /तोण्ह, दोण्हं[३], दुण्हि/,

संस्कृ० /त्रि/ (तीन); **गुज०** /त्रण/ **बं०** /तिन/ **अस०** /तिनि/ **ओ०** /तिनि/ **महा०** /तीन/ **सिं०** /टे/ **पं०** /तिन/ ; **श्रिण्या (शिना)** /त्रे/

कश्म० /त्रेअ्/,

पुरानी राजस्थानी[४] में /त्रिण्णि, त्रिण्हि/ रूप भी मिलते हैं। प्राकृतों[५]

१. शितिकण्ठ महानय प्रकाश, पृ० ३२।
२. पिशल : प्रा० भा० व्या० पैरा ४३६।
३. पिशल : प्रा० भा० व्या० पैरा ४३६।
४. डॉ० तेस्सितोरी : पुरानी राजस्थानी, पृ० ९९।
५. पिशल : प्रा० भा० व्या पैरा ४३८।

में कारकान्त रूप /तिण्ण, तउ, तओ/ मिलते हैं। मारवाड़ी[१] और मेवाड़ी में /ती, तीया/ और भोजपुरी में /तीनि/ ; 'रामचरित मानस' में /त्रय/ रूप मिलता है। यहाँ भी कश्मीरी का सम्पर्क संस्कृत से अधिक निकट है और गुजराती एवं 'मानस' के निकटतम है। परं श्रिण्या भाषा में नादान्त-लुण्ठित ध्वनि का विकास हुआ है जो ईरानी /सें/ के अनुकूल है। वास्तव में श्रिण्या भाषा की /त्रे/ ध्वनि अभारतीय आर्य ध्वनि है।

संस्कृ० /चतुर/ (चार) **पं०** /चार/ **गुज०** /चार/ **सिं०** /चार/ **बं०** /चार्/ **अस०** /चारि/ **ओ०** /चारि/ **श्रिण्या (शिना)** /चार/ **कश्म०** /ज़ोर/ ;

पुरानी राजस्थानी[२] में /च्यारि, चारि/ रूप मिलते हैं। तुलसी **मानस[३] में** /चारिक/ **भोजपुरी में** /चारि/ **मेवाड़ी में** /च्यार/ **मागधी में[४]** /चौंरा/ ; **प्राकृत[५] भाषाओं में** /चउरो, चऊओ, चउओ, चउ, चोंव्वार/ आदि रूप मिलते हैं।

उक्त रूपों में **कश्मीरी** /ज़ोर/ का साम्य अर्धमागधी के /ज़ो/[६] एवं **प्राकृत** /चोव्वार/ से अधिक है। परं कश्मीरी में /ज़ोर/ की /ज़/ ध्वनि, अघोष अल्पप्राण, दन्त-मूलीय एवं स्पर्श-संघर्षी बन गई है। जो इसकी विशेषता है। यहाँ भी कश्मीरी और श्रिण्या में कोई भी ध्वनि साम्य नहीं है। शितिकण्ठ ने 'महानय प्रकाश' (अध्याय ७/८ ; १०/५) में /चोरय/ का प्रयोग किया है।

संस्कृ० /पञ्चन्/, (पाँच) ; **पं०** /पंज्/ ; **गुज०** /पांच/ ; **महा०** /पांच/ ; **सिं०** /पंज/ **बं०** /पाँच/ **अस०** /पाँच/ **ओ०** /पाँच/, **श्रिण्या** /पोंश/ **कश०** /पांन्च़, पांछ्/ ।

प्राकृतों[७] में /पण्ण, पन्न, पण, पणु/ आदि रूप मिलते हैं। परं श्रिण्या की ध्वन्यात्मकता अपने में सबों से प्रथक् और कश्मीरी का विकास ठेठ भारतीय आर्य भाषाओं के अनुकूल ही है।

---

१. केलाग : ग्रैमर ऑफ द हिन्दी लैंग्वेज, पृ० १६१।
२. डा० तेस्सितोरी : पुरानी राजस्थानी, पृ० ६६
३. केलागः ग्रैमर आफ द हिन्दी लैंग्वेज ।
४. पिशल प्रा० भा० व्या० पैरा ४३८-६
५. „ „ „ „ पृ० ६५३
६. वही।
७. पिशल : प्रा० भा० व्या० पृ० ६५३।

संस्कृ० /षट्/ (छः); पं० /छे/ ; गुज० /छ/ ; महा० /सह/ ; सिं० /छ/ बं० /छय, छाँय्/ अस० /साँय/ ओ० /छाँ/ ; श्रिण्या /श्र:/, कश्म० /शें/, पुरानी[1] राजस्थानी में /छ/ मिलता है परं प्राकृतों[2] में इस प्रकार रूप मिलते हैं। छहिं, छण्हं, छण्ह, छय, छच्/, कश्मीरी में अघोष, मूर्धन्य पार्श्विक /ष/ अघोष, कठिन-तालव्य एवं संघर्षी में बदला है जबकि श्रिण्या में सघोष, अल्पप्राण, दंतमूलीय एवं उत्क्षिप्त में परिवर्तित हुआ है जो किसी भी भारतीय आर्य प्राकृत में नहीं है।

संस्कृ० /सप्तन्/ (सात); पं० /सत/ गुज० /सात/ महा० /सात/ सिं० /सत/ बं० /सात, शात्/ अस० /हाट/ ओ० /सातॉ/, श्रिण्या /सत/ कश्म० /सथ्/ पुरानी राजस्थानी[3] में /सत्त/ मिलता है। भारतीय आर्य प्राकृतों[4] में कार-कान्त रूप ये /शात, सत्त, सत्तहि, सतण्ह छत्त/ मिलते हैं। मेवाड़ी[5] में /हात, शात/ रूप भी मिलते हैं।

कश्मीरी में अघोष अल्पप्राण /त/ ध्वनि अघोष महाप्राण /थ/ में प्रवृद्ध हुई है। श्रिण्या भाषा में अघोष अल्पप्राण कभी भी अघोष महाप्राण में परिवर्तित नहीं होता है। यहाँ भी कश्मीरी श्रिण्या से अलग होती है।

संस्कृ० /अष्ठन/, (आठ) पं० /आठ/ गुज० /आठ्/ महा० /आठ/ बं० /आट्/ अस० /आठ्/ ओ० /आठ, आठाँ/ श्रिण्या /अंष्ठ/ कश्म० आंठ/, पुरानी राज०[6] में भी /आठ/ ही मिलता है। भारतीय प्राकृत[7] ग्रन्थों में ये /अट्ठ, अठ, अठ्ठ/ रूप मिलते हैं। भोजपुरी[8] में /अठ/ उपलब्ध है। केवल श्रिण्या भाषा में हो मात्र अनुनासिकता का आगमन हुआ है यद्यपि अनुस्वार से रहित ठेठ संस्कृत का तद्भव रूप प्रस्तुत करता है। परं कश्मीरी का रूप श्रिण्या विभाषा से भिन्न है।

संस्कृ० /नव/ (नव) ; पं० /नौ/ ;गुज० /नव्/ महा० /नऊ/ ; बं० /नय,

---

१. डॉ० तेस्सितोरी : पुरानी राजस्थानी, पृ० ६६ ।
२. पिशल : प्रा० भा० व्या०, पृ० ६५४ ।
३. डॉ० तेस्सितोरी : पुरानी राजस्थानी, पृ० ६६ ।
४. पिशल : प्रा० भा० व्या०, पृ० ६५६ ।
५. केलाग : ग्रै० ऑफ द हि० लैं०, पृ० १४७ ।
६. डॉ० तेस्सितोरी : पुरा० राज०, पृ० १०० ।
७. पिशल : प्रा० भा० व्या ६५६ ।
८. केलाग : ग्रै० ऑफ द हि० लैं०, पृ० १४६ ।

नॉय्/ **अस०** /नॉ/ **ओ०** /नॉ/ **श्रिण्या** /नव/, **कश्म०** /नव/ **पुरानी राज०**[1] में भी /नव/ ही प्राप्त होता है। प्राकृत[2] ग्रन्थों में कारकप्रत्ययान्त रूप ये /नव, नवण्ह, नवहि/ मिलते हैं। तुलसी[3] के मानस में /नव/ उपलब्ध होता है। नवीं-दशवीं शती के कश्मीरी प्राकृत ग्रन्थ 'महानय प्रकाश[4] में /नव/ मिलता है। **पुरानी राज०**[5] में /नव/ ही है। मेवाड़ी[6] मागधी में /नो/ और **मैथिली** में /नो, नव/ रूप मिलते हैं।

संस्कृ० /दश/ (दस) ; **पं०** /दस, दह/ **गुज०** /दस/ **महा०** /दह/ **सिं०** /दह्/ ; **बं०** /दश, दॉश/ **अस०** /दह, डॉह/ **ओ०** /दॉसॉ, दश/ **श्रिण्या** /दे/ **कश्म०** /दह/ ; **पुरानी राज०**[7] /दश, दस/ **महानय प्रकाश**[8] में /दह/।

आर्य प्राकृतों में /दश, दस/ परं 'ललित विग्रह राज' नाटक में /दह/ रूप मिलत है। पिंगल[9] सूत्रों में भी /दह/ ही अधिकत: मिलता है।

संस्कृ० /एकादश/ (ग्यारह); **पं०** /ग्याराँ/ **गुज०** /अगियार, अग्यार/ **महा०** /अकरा/ **सिं०** /यारहाँ/ **बं०** /एगार, अँगारॉ/ **अस०** /एघार/ **ओ०** /एगार/ **श्रिण्या** /अकाइ/ **कश्म०** /काह/ ; **पिंगल सूत्रों**[10] में/एक्कदश/ मिलता है अन्य **भारतीय प्राकृतों**[11] में /एक्कारह एआरह/ उपलब्ध होता है। **पुरानी राज०**[12] में कई रूप मिलते हैं। अग्यारह, इग्यार, अँग्याह, एग्गारह/ आदि, **भोजपुरी**[13] में /इगारह, इग्यारह/ उपलब्ध हैं। **मैथिली**[14] में / एंगारव्/ रूप हैं। **कश्मीरी भाषा** का /काह/ **डोगरी भाषा** के /काशी/ (एकादशी) के अधिक निकट है। **यहाँ भी श्रिण्या से कोई साम्य नहीं है।**

---

१. डॉ० तेस्सितोरी : पु० रा०, पृ० १००।
२. पिशल : प्रा० भा० व्या०, पृ० ६५७।
३. केलाग : ग्रै० ऑफ द हि० लैं०, पृ० १४६।
४. महानय प्रकाश अध्याय ११/३।
५. डॉ० तेस्सितोरी : पु० राज०, पृ० १००।
६. केलाग : ग्रै० ऑफ द हि० लैं०, पृ० १४८।
७. तेस्सितोरी : पु० राज०, पृ० १००।
८. शतिकण्ठ : 'महानय प्रकाश' (कश्मीरी संस्कृत सिरीज)।
९. पिंगल सूत्र १/४६, १/१०५ ११०।
१०. पिंगल सूत्र १/११४।
११. पिशल : प्रा० भा० व्या०, पृ० ६५८।
१२. डॉ० तेस्सितोरी : पुरानी राज०, पृ० १००।
१३. केलाग : ग्रै० ऑफ हि० लैं०, पृ० १४६।
१४. केलाग : ग्रै० ऑफ हि० लैं०, पृ० १४६।

संस्कृ० /द्वादश/ (बारह) ; पं० /बाराँ/ ; गुज० /बार/ महा० /बारा/ सि० /बारहाँ/ ; बं० /बार, बारो/ अस० /बारॉ/ ओ० /बराँ, बार/ श्रिण्या /बाड्/ कश्म० /बाह्/ ; पुरानी रा०[1] में /बार, बारह/ रूप हैं । प्राकृत ग्रन्थों[2] में /बारह, बारस/ रूप हैं । मेवाड़ी[3] में /बारा, वाह/ रूप उपलब्ध हैं । कश्मीर के नवीं-दसवीं शती के ग्रन्थ 'महानय प्रकाश'[4] में /बाहि/ रूप मिलता है ।

कश्मीरी और हिन्दी में अन्त ध्वनि /ह/ है । यदि कश्मीरी मध्य व्यंजन लोप स्वीकार करें तो हिन्दी एवं मेवाड़ी के निकटतम में आता है । यहाँ यह तथ्य भी स्पष्ट होता है कि **कश्मीरी के समान अन्य भारतीय भाषाओं में श/, ष/, /ह/ ध्वनि में बदलता है परं श्रिण्या भाषा में /श, ष/ कदापि /ह/ में नहीं बदलता है :—कश्म० /हून (श्वान)/ ; श्रिण्या /शूं/** (कुत्ता) । श्रिण्या के /बाड्/ में भारतीय प्राकृतों से एक तटस्थता दिखाई देती है क्योंकि किसी भी भारतीय विभाषा में /ड्/ अतिह्रस्वान्त रूप में उपलब्ध नहीं होता है ।

संस्कृ० /त्रियोदश/ (तेरह) ; पं० /तेराँ/ गुज० /तेर/ महा० /तेरा/ सि० /तेरहाँ/ बं० /तेर, तॅरो/ अस० /तेर टेरॉ/ ओ० /तेरॉ/, शिण्या /च्रॅाय्/ कश्म० /त्रुवाह् / पुरानी राज०[5] /तेर/, मेवाड़ी[6] /तेरा/ हार्नली[7] /तेरह/ ।

प्राकृत भाषाओं में /तेरस, तेरसी, तेरह/ रूप मिलते हैं । **समस्त भारतीय आर्य भाषाओं में मात्र कश्मीरी ही /त्र/ की अग्रिम-ध्वनि को सुरक्षित रख सकी है** । कश्मीरी में /य/ ध्वनि /व/ में प्रायः परिवर्तित होती है ।

संस्कृ० /चतुर्दश/ (चोदेह) ; पं० /चोदाँ/ गुज० /चौद/ महा० /चोदा/, बं /चोद्द, चोद्दॉ/ सि० /चोदहाँ/ अस० /चोध्य, सोइध्या/ ओ० /चोदॉ/ श्रिण्या /चोदेंह/ कश्म० /च्वदाह्/ पुरानी राज०[8] में /चऊद, चउद्दह/ ; हार्नली[9] /चौदह चउद्दह/ ; तुलसी 'मानस'[10] /चारिदश/ ; मेवाड़ी[11] /चवदा/ ।

---

१. डॉ तेस्सितोरी : पुरानी राज० १०० ।
२. पिशल : प्राकृत व्याकरण, पृ० ६५८ ।
३. केलाग : ग्रै० ऑफ हि० लैं०, पृ० १४८ ।
४. शतिकण्ठ : महानय प्रकाश अध्याय ६/१, १०/८ ।
५. डॉ० तेस्सितोरी : पुरानी राज० १०० ।
६. केलाग : ग्रै० ऑफ हि० लैं १४८ ।
७. हार्नली : ईस्टर्न हिन्दी ग्रैमर पैरा ३५७ ।
८. डॉ० तेस्सितोरी : पुरानी राज १०० ।
९. हार्नली : ईस्टर्न हिन्दी ग्रैमर पैरा ३५७ ।
१०. अयोध्याकाण्ड [सोचवि नहिं दशरथ राऊ भुवन **चारिदश** प्रकट प्रभाऊ] ।
११. केलाग : ग्रैमर ऑफ हि० लैं०, पृ० १४८ ।

प्राकृत ग्रन्थों[१] में /चोॅद्दस/ एवं चोॅद्दह/ आदि रूप मिलते हैं। इस तुलना में दृष्टव्य यह है कि श्रिण्या विभाषा का /चोदेह/ ठेठ भारतीय आर्य भाषाओं के निकटतम है परं ग्रियर्सन समस्त श्रिण्या संख्या को ईरानी के निकट ठहराते हैं। कश्मीरी /चोदेह/ तो पुरानी राजस्थानी के अधिक निकट आता है। 'महानय प्रकाश'[२] की प्राकृत में /चोदाह्/ मिलता है।

संस्कृ० /पञ्चदश/ (पन्द्राह) ; **पं०** /पंदराँ, पन्द्राँ/ **गुज०** /पन्दर, पंदर/ **महा०** /पंधरा, पन्हा/ **सि०** /पन्द्राहाँ/ **बं०** /पनेर, पाँनेराँ/ **अस०** /पोन्धर, पोन्धाँराँ/ **ओ०** /पन्दर, पाँन्दाँराँ/ **श्रिण्या** /पाँजुलंड़्/ **कश्म०** /पंदाह्/ **पुरानी राज०**[३] में /पनरह, पनर, पन्दर/ आदि रूप मिलते हैं। **हार्नली**[४] ने /पणरह, पणरहो, पणारहो/ रूप दिए हैं। **भोजपुरी**[५], **मागधी** एवं **मैथिली** क्रमशः /पनदह, पनरह, पनरव्/ आदि रूप मिलते हैं। **प्राकृत ग्रन्थों**[६] में /पण्णरस, पण्णरह/ उपलब्ध हैं।

संस्कृ० /शोडश/ (सोलह) ; **पं०** /सोलाँ/ **गुज०** /सोल/ **महा०** /सोला/ **सि०** /सोराहाँ/ **बं०** /शोलाँ, षोल/ **अस०** /षोल, होल/ **ओ०** /शोहल/ **श्रिण्या** /श्रोंय्/ **कश्म०** /शुराह/ **पुरानी राज०**[७] /सोल, सोलह/ **हार्नली**[८] /सोलह/; **भोजपुरी**,[९] **मागधी एवं मैथिली** क्रमशः /सोरह/ **तुलसी 'मानस'** /सोरह/ **मेवाड़ी**[१०] /होला/ **प्राकृत रूप**[११] /सोलह, सोल/।

यहाँ भी कश्मीरी और श्रिण्या में कोई ध्वन्यात्मक साम्य नहीं है।

संस्कृ० /सप्तदश/ (सत्रह) ; **पं०** /सताराँ/ **गुज०** /सत्तर/ **महा०** /सतरा **सि०** /सतरहाँ/ **बं०** /सतेर, शाँतेराँ/ **ओ०** /सतर, साँताराँ/ **अस०** /होटाँराँ,/

---

१. पिशल : प्रा० भा० व्या०, पृ० ६५६।
२. शतिकण्ठ : महानय प्रकाश (६वीं, १०वीं, शती की कश्मीरी कृति)।
३. डॉ० तेस्सितोरी : पुरानी राज० पृ० १००।
४. हॉर्नली : ई० ग्रै० हि० लैं पैरा ३५७।
५. केलाग : ग्रै० ऑफ हि० लैं० १४५।
६. पिशल : प्रा० भा० व्या०, पृ० ६५८।
७. डॉ० तेस्सितोरी : पुरानी राज०, पृ० १००।
८. हार्नली : ई० ग्रै० हि० लैं० पैरा ३५७।
९. केलाग : ग्रै० ऑफ हि० लैं० १४५।
१०. केलाग : ग्रै० ऑफ हि० लैं० १४८।
११. पिशल : प्रा० भा० व्या०, पृ० ६५८।

यहाँ उल्लेखनीय तथ्य यह है कि श्रिण्या विभाषा का सौ उक्त पद्धति के अनुकूल दै×दै (१०×१०) होना चाहिए था परं यहाँ कश्मीरी का प्रभाव पड़ा है जो भारतीय प्राकृतों के अनुकूल है।

संस्कृ० /सहस्र/ (हजार) ; **पं०** /हज़ार/ **गुज०** /हजार/; **महा०** /हजार/ **सिं०** /हजारु/ ; **बं०** /हजार, हजॉर/ **अस०** /हॅजार/ **ओ०** /हॉजार/ **तुलसी 'मानस'** /सहस/, **श्रिण्या** /सास/ **कश्म०** /सास/, प्राकृत /सहस्स/[1]

संस्कृ० /लक्ष/ (लाख); **पं०** /लाख/ **गुज०** /लख्/ **महा०** /लख्/ **सिं०** /लक्खु/ **बं०** /लक्ष/ या /लॉक्खॉ/ **अस०** /लाख/, **ओ०**/ लॉख्यॉ, लक्ष/ **तेलुगु** /लच्चइ/ **मेवाड़ी** /लख/ **श्रिण्या** /लाख/ **कश्म०** /लछ/।

संस्कृ० /कोटि/ (करोड़) ; **पं०** /करोड़/ **गुज०** /करोड़/ ; **महा०** /कोटी/ **सिं०** /किरोड़ु या क्रोड़ु/ **बं०** /कोटि/ **अस०** /कोटि/ **ओ०** /कोटि/, **श्रिण्या** कुछ भी नहीं ; **कश्मीरी** /करोर/ **मेवाड़ी** /करोड, कोड/

संस्कृ० /अर्बुद/ ; **कश्म०** /अबुर्द/ [**हिन्दी** /अरब/, शेष भारतीय भाषाओं का उपलब्ध नहीं हुआ]।

संख्येय :—

कश्मीरी संख्यापरक शब्दों के संख्येय एवं पूरक का बहुत कुछ सरलीकरण हुआ है। परं श्रिण्या यहाँ स्पष्टतः काफिरी और गलचा परिवारों की ओर झुकी है। वहाँ संख्या परक के अन्त में /दुमुग्/ एवं /मुगट/ से संख्येय की रूपरचना होती है। परं कश्मीरी ने भारतीय प्राकृतों[2] के अनुकूल /म/ प्रत्ययान्त से संख्येय या पूरक का निर्वाह किया है। यद्यपि संस्कृत भाषा में /तम/ का प्रत्ययान्त प्रत्येक संख्या के संख्येय निर्माण में प्रयुक्त नहीं होता है क्योंकि संस्कृत में लिङ्ग-जटिलता की विधा से ऐसा संभव नहीं है। परं संस्कृत का यह नियम प्राकृतों ने स्वीकार नहीं किया है। इसी प्रकार कश्मीरी प्राकृत ने भी विकास दिशा के अनुकूल इसका सरलीकरण किया है।

कश्मीरी /इम, इ्म/ प्रत्ययान्त संख्येय :—

कश्म० /अकिम् (पहला)/ ; /द्वियिम् (दूसरा)/ ; /त्रेयिम् (तीसरा)/ ; /चूरिम्[3] (चौथा)/ /पूंचि़म् (पांचवा)/ ।[4]

---

१. पिशल : प्रा० भा० व्या०, पृ० ६७० ।
२. पिशल : प्रा० भा० व्या०, पृ० ६४५, पंक्ति १० ।
३. ऊ, मात्र=8 नातिदीर्घ ध्वनि ।
४. /च़/ अघोष महाप्राण ।

यही क्रम, इसी प्रकार से, सौ तक चलता है। परं चान्द्र तिथियों में यह क्रम नहीं चलता है :—

कश्मीरी	हिन्दी
/ओंकदोह्/	/पड़वा, एकम्/,
/द्वाय/	/दूज/
/त्रैय/	/तीज/
/च़ोरम्/	/चौथ/
/पांच़म्/	/पांचम/ (पांचें)
/शेयम्/	/छट/
/सतम्/	/सातम/ (सातें)
/अंठम्/	/आठम्/, (आठें)
/नवम्/	/नवम्/, (नोवीं, नोमीं)
/दहम्/	/दस्सम्/, (दसमीं)
/काह/	/ग्यारस्/
/बाह/	/बारस्/
/त्रुवाह/	/तेरस्/
/च़ोदाह/	/चौदस्/
/मावस्/	/मावस्/
/पंनिम्/	/पूनम्/, (पूनो)

उक्त हिन्दी तिथि परक मारवाड़ी[1] के हैं जो सामान्यतया कश्मीरी भाषा से ध्वन्यात्मक साम्य रखते हैं। कोष्टक में ब्रज-प्रदेश के वे शब्द हैं जो मारवाड़ी से भिन्न हैं, शेष ब्रज तथा मारवाड़ी में समान हैं। श्रिण्या विभाषा में तिथि (चान्द्र) परक है ही नहीं।

कश्मीरी में जब संख्यावाचक संख्येय संकेत-वाचक के समान प्रयुक्त होता है तो /इस्/ प्रत्यय अन्त में लगता है। जो संबन्ध-कारक का कार्य करता है :—

कश्मीरी	संस्कृत
/अकिमिस्/	/एकतमस्य/
/द्वयिमिस्/	/द्वितीयतमस्य/

१. केलाग : ग्रै० ऑफ हि० लैं०, पृ० १५५।

कारकान्त कश्मीरी संख्या :—

(१)	कर्ता	/अक्/
(२)	कर्म	/अकिस्/
(३)	कारण	/अकिस्वेशि/, /अकिसिन्धकिन्य्/
(४)	संप्रदान	/अकिस्क्यूत्/
(५)	अपादान	/अकिस्निश्/
(६)	संबन्ध	/अकिसुन्दं/
(७)	अधिकरण	/अकिस्प्यठ्/ /अकिसमंज्/

कश्मीरी में निश्चयार्थ बहुवचन का प्रयोग अवधी के समान होता है :—

कश्मीरी	रामचरितमानस[1]
/सतंव/	/सातव/
/अठांव/	/अठव/
/नवव्/	/नवम्/

अंशात्मक (फ्रेक्शन) अंकों का प्रयोग कश्मीरी में भारतीय भाषाओं के समान ही प्रयुक्त होता है, मात्र ध्वन्यात्मक भेद कहीं कहीं अवश्य रहता है परं सामान्य प्रवृत्ति एक ही है :—

कश्मीरी	हिन्दी[2]
/अड् पाव्/	/आध पाव/ (अर्द्ध)
/स्वाद् पाव्/	/सवा पाव/ (सपाद)
/डोड पाव्/	/डेढ़ पाव/
/डाइ पावं/	/अढ़ाई पाव/
/साड पांछ/	/साढ़े पांच/
/दून् अंठ/	/पौने आठ/ (ऊन)
/दून हथं/	/पौने सौ/
/डाड् हथं/	/अढ़ाई सौ/
/दून ज़ोरंहथं/	/पौने चार सौ/
/साड अंठशथं/	/सवा आठ सौ/
/डोड सास/	/डेढ़ हजार/

---

१. केलाग : ग्रै० ऑफ हि० लैं०, पृ० १५४ ।

२. वही, पृ० १५७ ।

/डाड़् सास/	/अढ़ाई हज़ार/
/साड त्रेसास/	/साढ़े तीन हज़ार/
/डोंड लछ्/	/डेढ़ लाख/

परं शिण्या में अर्ध के लिए /त्रण या चक्/ है। अढाई के लिए /दुगं त्रण/, सवा पाव /एंकग पाउ/ के रूप चलते हैं जिनका कश्मीरी से कोई सम्बन्ध नहीं है।

गुणात्मक बोधक संख्या :—

कश्मीरी	हिन्दी[1]
/अगुन/	/एक गुना/
/दॊगुन/	/दुगुना/
/त्रॆगॊन/	/तिगुना/
/चगॊन/	/चौगुना/
/सतंगॊन/	/सतगुना/

धागे की लड़ी के लिए भी यह गुणन आता है :—

कश्मीरी	हिन्दी[2]
/लरं/	/लड़ा/
/अक् (ख्) लरं/	/एक लड़ा/
/ज़ंलरं या दुलॊर/	/दुलड़ा/
/त्रॆलरं/	/तिलड़ा/
/चोरलर/	/चौलड़ा/

जोड़ पद्धति :—

(क) /सथ दो गुण्य गव चोदाह/ **कश्मीरी**
(सप्त द्विगुणीकृत्य गतः चतुर्दश)
/सात दूनी चौदह/ **हिन्दी**[3]

(ख) /चोर त्रे गय बाह/ **कश्मीरी**
/चार ती बारह/ **हिन्दी**

(ग) /बाह् दो गुण्य गय चोवूह/ **कश्मीरी**
/बारह दूनी चौबीस/ **हिन्दी**

++++++++++++++++

१. केलाग : ग्रै० ऑफ हि० लैं०, पृ० १५८।
२. वही, १५८।
३. वही, १५८।

धन्य है यह नगर—श्रीनगर

भूषणलाल कौल एम० ए० पूर्वार्द्ध
उपमंत्री, हिन्दी परिषद्

बस से उतरते ही, गाँव के एक साधारण व्यक्ति को लोगों की एक विशाल भीड़ में सम्मिलित होते ही ऐसा आभास होता है मानो एक छोटी सी बूँद समुद्र में गिर गई हो। बेचारा इधर उधर देखकर नापते हुए कदम बढ़ाकर दूसरों के बीच में अपने को छोटा समझता हुआ, छोटा-सा रास्ता निकालकर लगातार इस समुद्र से निकलने के प्रयत्न में लगा रहता है। चाहे दफ्तर पहुँचने में दस ही मिनट क्यों न रह गये हों उसका रास्ता दूसरी ऐसी हज़ारों बूँदों से भरा पड़ा है जो उसकी मुक्ति की बाधक बन जाती हैं। घड़ी पर नज़र पड़ी कि मानो 'महाकाल' पर नज़र पड़ी। दूसरे क्या जाने इसकी दशा।

यह लीजिये दूसरी कयामत ; चौराहे से पुलिसमैन ही गायब है और इन अन्धी गाड़ियों, मोटरों, टैक्सियों, साइकिलों, स्कूटरों, ताँगों—कहाँ तक कहूँ—को राह कौन दिखाये ? यहाँ आकर सब अन्धे बनकर बुत की भाँति ठिठक गये हैं। इन बेचारों को राह दिखाने वाला, प्रकाश देने वाला सूर्य—पुलिसमैन—पता नहीं कहाँ फँस गया है। चारों ओर से ट्रैफिक जाम ! इनकी तो रोशनी चली गई थी पर इन लोगों को क्या कहें ? ये बचारे भी फंस गये हैं। 'लेट' हो रही है, क्या किया जाय। पैट्रोल का धुआं जितना उससे हो सकता है, उतने बल से, सारे वातावरण को अपने रंग में रंग रहा है। मानों अपना राज्य फैला रहा है। शुक्र है कि इस राक्षस के कुराज्य को शीघ्र ही समाप्त कर दिया गया। येन-केन-प्रकारेण इन अन्धों की आँखों में ज्योति आ गई और धीरे-धीरे, जैसे लाठी टेकते हुए, यह ट्रैफिक चल दिया।

सभी ने राहत की साँस ली और लगे भागने-कोई इधर कोई उधर। न अपने आदर सम्मान का ख्याल न अपने बुढ़ापे की परवाह। स्कूल के बच्चों का तो अधिकार ही था परन्तु ये महानुभाव-गण जिनके गले में बड़प्पन की निशानी (किसी के गले में नीली, किसी के पीली, किसी के लाल इत्यादि कपड़ों के टुकड़ों की) लटक रही हैं— कहाँ भागे जा रहे हैं।

आगे चलिये ! यह है यहाँ के प्रसिद्ध मन्दिरों में से एक। सभी सम्भ्रान्त नागरिक यहाँ अपने मस्तक प्रातःकाल ही नहीं, दिन के एक बजे, चार बजे और सायं झुकाते हैं। बड़ी कशमकश के पश्चात् ये भक्त-गण अपने इष्ट देवी-देवताओं (पत्थर के नहीं—सजीव) के पवित्र दर्शन करके रसानन्द की अनुभूति में तल्लीन होकर पूरे निर्धारित समय को बिताने के पश्चात् उन देवी-देवताओं का अनुकरण करने लगते हैं—केवल बोलचाल में ही नहीं वेशभूषा, चलने-फिरने और तौर-तरीकों में भी। कुछ भक्तगण तो इतने प्रभावित होकर इस पवित्र मन्दिर से बाहर निकलते हैं कि अपने को भी वही देवी या देवता समझ बैठते हैं जो उन्हें इष्ठ हैं। मन्दिर में देखे गये सभी देवी-देवताओं के नाम भूलना इनकी शुद्ध-भक्ति पर आक्षेप लगाना होगा। इन 'पहुँचे हुए' भक्तों को कोई भजन जो इन्होंने वहाँ सुना—कभी भूल जाता है, राम राम !! यहाँ नियम ही ऐसा है कि वे देवी-देवताओं के दर्शन करना दिन के एक बजे से आरम्भ करते हैं क्योंकि उनके ये इष्ट देवादि अपने भक्तों को प्रातःकाल जगाना अनुचित मानते हैं और घर तथा स्कूल कालेजों से भागकर आने की सुविधा भी तभी रहती है। सुबह का विश्राम उनके पौष्टिकाहार से कई गुना उचित है।

इस देवालय को नमस्कार करके आइये इसके चारों ओर घूमा जाय। यह देखिये ये छोटे-छोटे चेले मन्दिर की पवित्र ड्योडियों के साथ कान लगा कर अपनी साधना में लीन हैं ! धन्य हैं ये चेले ! कैसा प्रोत्साहन मिल रहा है मुझ जैसे कुकर्मी को भी। ठीक ही तो है। आज ही से भक्ति के ऐसे क़ठिन मार्ग पर चलकर कल अपने 'लक्ष्य' को प्राप्त कर सकेंगे।

अब ज़रा आगे चलिये। यह है इस शहर का प्रकृति से संयोग करने का स्थान ! जी हाँ चारों ओर से लोहे की सलाखों की रेलिंग मे बन्द। दो दरवाजे लगे हैं। अन्दर जाकर प्रकृति के मिलन से लाभान्वित हो जाइए। यहाँ आपको कोई बाधा नहीं, कोई रुकावट नहीं। केवल आप यहाँ आप खेल नहीं सकते। इधर-उधर तेज़ चल नहीं, सकते। ताश नहीं खेल सकते। सो

नहीं सकते। जोर से बात नहीं कर सकते। जोर से हँस नहीं सकते, क्योंकि ऐसा करने से दूसरों के आनन्द में वाधा पड़ेगी। बस आप अन्दर आ गये हैं, बैठे रहिये। फूलों की क्यारियाँ देखते रहिये, कोई आपत्ति नहीं। हाँ, इस बात का विचार रखिए कि कहीं आपका पाँव निश्चित स्थान से इधर-उधर न पड़ जाय। नहीं तो—नहीं तो आपके विरुद्ध कानूनी कारवाई की जायेगी। मैं क्या करूँ यह तो नियम है यहाँ, प्रकृति का।

हो गया प्रकृति से भी सँयोग। अब आइए पानी पिया जाय। प्यास वहुत लगी है। चलो नदी पर पी लें। लेकिन कहाँ? मैं एकदम भल गया हूँ। मैं तो नगर में हूँ नगर में! यहाँ राजा 'नल' से प्रार्थना करनी होती है। यदि उनको दया आई तो आप अपनी प्यास बुझा सकते हैं अगर वे चले गये हैं तो बस···। अच्छा चलिये, प्रार्थना की जाय। गंगा माता की प्रार्थना करने के अभ्यस्त थे। परन्तु यहाँ तो राजा 'नल' के अधीन हो गए हैं—कैसी बिडम्वना है? ये लीजिए हो गई छुट्टी यहाँ से भी। यहाँ तो हम जैसे प्यासों की संख्या गिनी ही नहीं जा सकती क्योंकि वे अंग्रेजी के 'अक्षर विशेष' में खड़े हैं।

ये हैं हमारे आगे इस युग के युव-जन। देश की रक्षा का भार इन्हीं के कन्धों पर है। भविष्य के नेता, देश की नैय्या के खेवनहार। भारतमाता के रथ के दो पहिये। एक पहिया है ये, वाल बढ़ाये, घुटनों से पैरों तक खुली पेंट (घण्टा वोटम)—शायद अब टाइट फैशन से ऊब गये हैं, आँखों पर काले शीशे की दो पट्टियाँ रखे हुए अपने ही रंग का संसार देख रहे हैं—लगता है अपने पुरुषत्व को बेरंग समझ बैठे हैं और फिर रँग रहे हैं। अपने में नारीत्व का समावेश कराना चाहते हैं। वह देखिए! ये है भारतमाता के रथ का दूसरा पहिया। कोट और पैंट पहने, गर्दन तक खुले बाल, पैरों मैं फ्लीट। बोलचाल में तेज, चलने-फिरने में फिरकी जैसी, दाहिने हाथ में पर्स। फिल्मों की बातें इनसे न कीं तो आप अभी 'बैकवर्ड' ही हैं। बाज़ार की दुकानों से मुहम्मद रफी, किशोर कुमार, अथवा लतामंगेशकर की आवाज़ से आवाज, इनके समान, न मिलाई तो आप आधुनिकता से बिल्कुल पीछे, बहुत पीछे हैं। किसी फिल्मी हीरो हीरोइन द्वारा कही गई बात, यानि डायलॉग, अदा न किया तो आप अरसिक हैं, किसी भोली-भाली लड़की अथवा स्त्री से ऐसी-वैसी बात न कही तो आप ख़ाक इश्क करेंगे? और अगर इश्क ही नहीं किया तो आप खाक educate होंगे?

रात में दुकानें तो सफेद रोशनी से चमकती हैं। लगता है चाँदी को पिघलाकर इन दुकानों पर उसका लेप किया गया है। लेकिन इन पर बेचा क्या जाता है, यह रहस्य की बात है। खैर छोड़िये क्या करना है यह जान कर। यह 'नागरिक' लोगों के फेल-शौक हैं।

अब जरा इस गली में जाने का कष्ट कीजिये। आपके श्रीचरण ज्यों ही इस गली में पड़ेंगे त्यों ही आपका स्वागत एक अलोक-सामान्य गन्ध करेगी जो अब तक मानों आपकी ही प्रतीक्षा में थी। आपको यह भी जान लेना चाहिए कि यहाँ एक विशेष विभाग भी खोला गया है जो इस 'सु' गन्ध की रक्षा एवं (प्रतिदिन की) उन्नति का विशेष ध्यान रखता है।

अब आगे कहाँ जाना है? आलौकिक सुगन्धि का आनन्द तो यहीं मिल गया।

++++++++++++++++

मति कीरति गति भूति भलाई। जब जेंहि जतन जहाँ जेंहि पाई॥
सो जानब सतसंग प्रभाऊ। लोकहुँ बेद न आन उपाऊ॥
बिन सत्संग विवेक न होई। रामकृपा बिनु सुलभ न सोई॥
सतसंगत मुदमंगल मूला। सोई फल सिधि सब साधन फूला॥
सठ सुधरहिं सतसंगति पाई। पारस परस कुधात सुहाई॥
बिधि बस सुजन कुसंगत परहीं। फनि मनि सम निज गुन अनुसरहीं॥

—**रामचरितमानस** (बालकाण्ड)

*　　　*　　　*

प्रिय बानी जे सुनहिं जे कहहीं। ऐसे नर निकाय जग अहहीं॥
बचन परम हित सुनत कठोरे। सुनहिं जे कहहिं ते नर प्रभु थोरे॥

—**रामचरितमानस** (लंकाकाण्ड)

*　　　*　　　*

जो हँस के बोले बैरी तो तुम मत मिलिओ कन्त।
मीत रूठि जो जावे तो घर ले अइयो तुरन्त॥

—ब्रज की लोकोक्ति

*　　　*　　　*

आँसू

शामा सेठी
भू० पू० कोषाध्यक्ष, हिन्दी परिषद्

आस्था के जिस आधार पर
भावुक इन्सान
पाँव जमाए खड़ा होता है
जव वह—
निर्मम वास्तविकता की किसी
एक ही चोट से, हिल उठता है ;
आशंकाओं के भूकम्प
चिन्ताकुल झटकों में वलवले लेते हैं ;
ज़िन्दगी के आँगन में
निराशाओं के तूफान खौलते हैं ;
और घवराई हुई ख़ुशियाँ—मौत को तरसती हैं ;
अभिलाषाएँ, ठुकराए हुए, टूटे जाम की भाँति
बिखरती हैं ;
बेबसी के उस आलम में—
हज़ारों आकाँक्षाएँ
दिल की वन्द दीवारों से—
सिर पटकतीं हैं ;
उनकी आहों का मेघाडम्बर
घुमड़ घिर कर आता है,
तब कहीं जाकर—
एक आँसू निकलता है।

++++++++++++++++

एक लेखक की आस्था

ई० बी० व्हाइट

(संयुक्त राष्ट्र अमरीका की 'बुक-कमेटी' द्वारा १९७१ का 'साहित्य का राष्ट्रीय पदक' प्रदान किए जाने पर श्री व्हाइट ने एक अभिभाषण भेजा था। उक्त पदक किसी जीवित लेखक को उसके साहित्य के सम्पूर्ण कलेवर की उत्कृष्टता पर दिया जाता है। श्री व्हाइट एकान्त, दूरस्थ स्थान पर रहते हैं और कमेटी के समारोह में पदक लेने उपस्थित नहीं हुए थे। एक महाप्राण लेखक के आत्म-सम्मान, उसकी विनय शीलता तथा उसके मूल्यों का जो फड़कता रूप इस अभिभाषण में है, उसने हमें इसका अनुवाद प्रकाशित करने के लिए बाध्य किया।

यह अभिभाषण यू० एस० आई० एस० की पत्रिका 'स्पेन' के सितम्बर, १९७३ के अंक में छपा था। **श्री एम० रियाजुद्दीन,** वरिष्ठ सम्पादक, 'स्पेन' के १६-११-१९७३ के पत्र द्वारा हमें इस अभिभाषण का अनुवाद 'वितस्ता' में प्रकाशित करने की अनुमति प्राप्त हुई थी। यू० एस० आई० एस०, 'स्पेन' उसके सम्पादक श्री **स्टीफॅन एस्पी** तथा श्री एम० रियाजुद्दीन के प्रति हम आभार प्रकट करते हैं।—**सम्पादक**)

मैं कमेटी के इस पुरस्कार को धन्यवाद तथा जितना मिथ्याभिमान मैं कर सकता हूँ उसके साथ, इतनी बड़ी दूरी से स्वीकार करता हूँ। कमेटी की बैठक में उपस्थित न होने के बारे में मैं बहुत दुखी हूँ। दस वर्ष पूर्व (यातायात के साधन के रूप में) रेल की पटरी मेरे नीचे से खींच ली गई थी, और इससे न्यूयॉर्क के साथ मेरा लगभग सम्बन्ध-विच्छेद हो गया। फिर १६ मास पूर्व मैं एक मोटर-दुर्घटना में फँस गया था, और इसने सड़क (के द्वारा यात्रा) को भी मेरे लिए एक समस्या बना दिया। जहाँ तक आकाश का सम्बन्ध है, मैंने 'उड़ने वाली मशीनों' का प्रयोग १९२९ में छोड़ दिया

था, जबकि उनमें से एक के चालक ने, हिमान्धता के कारण, (उड़ान का) 'चार्ट' मुझे दे दिया और मुझसे से कहा कि मैं (जहाज़ को) क्लीवलेण्ड हवाई अड्डे की ओर ले चलूँ।

साहित्य का संसार कभी-कभी मुझे इतना ही दूर तथा अगम्य प्रतीत होता है जितना न्यूयॉर्क नगर, और उस आश्चर्यजनक, अव्यवस्थित तथा मोहक संसार पर विस्तार से टिप्पणी करना मेरे लिए मूर्खतापूर्ण होगा। मैं बहुत पहले इसमें ढुरक कर आ गया था, जब मेरी कोई और तय्यारी नहीं थी; एक स्थायी, बेचेनीयुक्त जिज्ञासा की खुजली के अतिरिक्त। (प्रभात में) जल्दी ही खटक उठने वाले 'टाइप राइटर' की आवाज के प्रेम में मैं पड़ गया था--और तभी से उसमें बँधा हूँ। तब मैं प्रकाशित-शब्द की अच्छाई में विश्वास करता था, और आज भी करता हूँ। उसमें मुझे एक (अन्त-भूँत) आवश्यकीय अच्छाई प्रतीत होती थी--(घनी हरियाली के मध्य) पत्तों की फफूंद की सुगन्ध के समान। पदक से सम्मानित हो जाने के बाद अब मैं अपने कृतित्त्व के 'कलेवर' के विषय में बोल सकता हूँ-- इस शब्द (कलेवर) की ध्वनि परमोत्तम है, परन्तु हाल के वर्षों की (अव्यवस्थित एवं) असावधानियों से मुक्त अपनी उपलब्धियों पर दृष्टिपात करने पर "अपने कृतित्त्व का शव" कहना मुझे अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

मैंने सर्वदा यह अनुभव किया है कि एक लेखक का प्रथम कर्त्तव्य है ऊर्ध्वमुखी होना, उड़ान भरना, हो सके तो औरों को भी साथ ले जाना। यह करने के लिए साहस की आवश्यकता है, यत्किंचित 'अहं' की भी। मेरा प्रिय हवाबाज एक लेखक कदापि नहीं था, वे थे डा० पिकार्ड, एक गुब्बारे-बाज़ जिन्होंने, एक बार, एक प्रयोगात्मक क्षण (के आवेग) में दो हजार छोटे-छोटे (गैस-भरे) गुब्बारों के सहारे एक उड़ान भरी थी। यह आशा करते हुए कि 'सम्भाव्यों का नियम' उनकी सहायता करेगा और जब वे 'स्ट्रेटोस्फीयर' (अति-आकाश) के क्षीण वायुमण्डल में पहुँचेंगे तब कुछ, सब नहीं, गुब्बारे फट जायँगे और उन्हें धीरे-धीरे पृथ्वी पर उतार लायेंगे। परन्तु जब डाक्टर महोदय अपनी अभीप्सित ऊँचाई पर पहुँच गये तब उन्होंने पिस्तोल खींच कर कोई एक दर्जन गुब्बारों का 'वध' कर दिया। वे (अग्नि की) लपटों में उतरे, और समाचार-पत्रों ने कहा था कि जब वे (गुब्बारों के नीचे लटकी) डलिया से (पृथ्वी पर) कूदे थे तब हँसी के परे वे अवरुद्ध-कण्ठ थे। प्रत्येक अच्छा लेखक इस प्रकार की उड़ानों का स्वप्न देखता है :--उड़ान, सम्भाव्य के

प्रति आत्मसमर्पण, अन्त में प्रज्वलित चरम-प्राप्ति विकम्पित हँसी से—या अश्रुओं से।

आज, जब अधिकांश पृथ्वी क्षतिग्रस्त और ख़तरे में है, अधिकांश जीवन क्षोभ-कारी तथा सुख-विहीन है, एक लेखक का साहस आसानी से उसका साथ छोड़ सकता है। मैं इसका प्रतिदिन अनुभव करता हूँ। इतने बुरे समाचारों के समक्ष, कैसे कोई अपनी आस्थाओं की रक्षा कर सकता है? ज़ाक कूस्तो हमें बताते हैं कि समुद्र मर रहा है, वे उसके (अन्तस में) नीचे गये हैं[१] और उन्होंने स्वयं उसकी पीड़ा को देखा है। अगर समुद्र मर गया तो मनुष्य भी मर जायगा। वहुत से लोग हमें बताते हैं कि नगर मर रहे हैं, और यदि नगर मर जाते हैं तो यह मनुष्य की मृत्यु ही तो होगी। आपाततः रूप से हमारे रसायनशास्त्र की चरम-सफलता इसी में है कि वह पक्षी के एक ऐसे अण्डे को उत्पन्न करे जिसका छिलका इतना पतला हो जो कि सेए जाने के भार से ही टूट जाय और उसमें से चिड़िया का बच्चा वन ही न सके—जो पक्षी की, उड़ान की तथा गान की, परम्परा को आगे चला सके। "अण्डा ही सब कुछ है" भ्रूणशास्त्री डा० एलेक्सिस रोमानोफ कहते हैं, जिन्होंने अण्डे की परख-परीक्षा में ही सारा जीवन व्यतीत किया है। क्या वास्तव में यही हमारे रसायन-शास्त्र की चरम सफलता होगी—सब का नाश, अण्डे के नाश के माध्यम से।

परन्तु निराशा अच्छी नहीं है—लेखक के लिए, किसी के लिए भी। केवल आशा ही हमें ऊपर उठा सकती है—ऊपर बनाए रख सकती है। केवल आशा, औरएक विशेष आस्था कि यहविशिष्ट संरचना का चमत्कारी ढाँचा जिसका निर्माण सारे दुग्ध-पायियों में परम अद्भुत तथा सृजन-पटु इस प्राणी (मानव) ने किया है, उसका पराभव ध्वन्स एवं विनाश में नहीं हो सकता। यह आस्था लेखक की आस्था है, क्योंकि लेखन-कार्य स्वयं अपने में एक आस्था है, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं। और सबसे ऊपर, लेखक ही वह है जो उसे (आस्था को) जीवित रखता है—(स्वयं) कण्ठावरुद्ध हँसी से, या वेदना से।

अनुवादक : **डा० रमेशकुमार शर्मा।**

+++++++++++++++

१. ज़ाक कूस्तो ने समुद्र की अतल गहराइयों में उतरने की घण्टाकार पनडुब्बी का आविष्कार किया है, जिसे 'वेथीस्कोप' कहते हैं। कूस्तो और मिस कार्सन संसार के सर्व-प्रसिद्ध समुद्र-शास्त्री माने जाते हैं—**सम्पादक**।

ज्वालामुखी और एक बूँद आँसू

डॉ० रमेशकुमार शर्मा

एक पल की स्वीकृति
मन को उफानों में जगाकर
विस्मृति में—बह गई।

तन-भीगे बादलों की
धुँधली पहिचानों में उभर कर
रेशमी, इन्द्रधनुषी तानें—
जमीं, और पिघल गईं।

काँटों सी उठकर
थकी हुई तमन्नाएँ
यादों की शय्या पर
सर्वदा के लिए
सो गईं।

उबलते लावों के ज्वालामुखी
एक बूँद आँसू में डूब कर—
मर गये।

अदम्य क्षीर-सिन्धुओं के
जान-लेवा मंथन से उद्भूत
सारे अमूल्य रत्न—
झूठे पड़ गये।

साथ चलते साथियों के कदम
सोने के बन कर
लोहे की छायाओं में—
बदल गए।

मचल कर उठने वाली
फूल सी नज़र
बिजली बन कर गिरी
—और खण्ड-खण्ड हो गई
परन्तु, ये राख के पहाड़—
वैसे के वैसे ही बने रहे।

निरीह भटकने वाली प्रतिध्वनियाँ
पुकार बन-बन कर
रोती रहीं
मगर, सुनने वाले कान
बहिरे हो बने रहे।

जिसके प्रकाश में
वह स्वयं रास्ता खोजती थी
अपने मस्तक पर रहने वाली
उसी मणि को
स्वार्थी काली साँपिन, स्वयं ही
निगल गई।

और मुझ नीलकण्ठ को—
खौलते हुए ज़हर के सागरों को
गटागट पीकर—
चिर शीतलता मिल गई।

++++++++++++++

हिन्दी परिषद्

१६७२-७३ की गतिविधियाँ

++

अक्टूबर १६ ६५-६६ में हिन्दी परिषद् का गठन किया गया। सर्व सम्मति से यह निर्णय किया गया था कि विभाग के एम० ए० उत्तरार्द्ध और पूर्वार्द्ध के विद्यार्थियों तथा अनुसंधित्सुगण परिषद् के सामान्य सदस्य होंगे।

यह नियम बनाया गया कि जिस विद्यार्थी के पूर्वार्द्ध की परीक्षा में सर्वाधिक अंक होंगे उसे मंत्री नियुक्त किया जायेगा तथा जिस पूर्वार्द्ध के छात्र के बी० ए० की परीक्षा में हिन्दी में सर्वाधिक अंक होंगे उसे उपमंत्री नियुक्त किया जाएगा।

कोषाध्यक्ष का निर्वाचन पूर्वार्द्ध की कक्षा में से किया जाना निश्चित हुआ तथा निर्णय किया गया कि जिस विद्यार्थी ने पूर्वार्द्ध में संगीत एवं अन्य सांस्कृतिक कार्यों में सर्वाधिक रुचि प्रदर्शित की हो एवं सफलता पाई हो, उसे उपमन्त्री सांस्कृतिक कार्यक्रम, नियुक्त किया जायेगा। इस निर्णय के अनुसार इस वर्ष के पदेन एवं निर्वाचित पदाधिकारी इस प्रकार हुए :—

१—संरक्षक : राज्यपाल एवं कुलपति परमश्रेष्ठ श्री लक्ष्मीकान्त झा (पदेन)

२—अध्यक्ष : श्री नूरुद्दीन, उपकुलपति, (पदेन)

३—सभापति : डा० रमेशकुमार शर्मा, विभागाध्यक्ष (पदेन)

४—उपसभापति : कु० नीना कौल—विभाग में प्राध्यापक (पदेन)

(उपसभापति के विषय में यह निर्णय किया गया कि अध्यक्ष के अतिरिक्त जो शिक्षक विभाग में हों और परिषद् के सदस्य बनें वे बारी-बारी से प्रति वर्ष उपसभापति का कार्य करेंगे।)

५—मंत्री : वीणा कुमारी (उत्तरार्द्ध)

६—उपमंत्री : श्री भूषणलाल कौल (पूर्वार्द्ध)

७—उपमंत्री सांस्कृतिक-कार्यक्रम : कुमारी बसन्ती त्रिछल (उत्तरार्द्ध)

८—कोषाध्यक्ष : कुमारी अनुपमा सूद (पूर्वार्द्ध)

६—अनुसंधित्सु प्रतिनिधि : कुमारी फूल राजदान।

सभापति, उपसभापति एवं निर्वाचित पदाधिकारियों को मिलाकर परिषद् की कार्यकारिणी का गठन किया गया। यह भी निश्चित किया गया कि परिषद् की सामान्य बैठक प्रति शनिवार को हुआ करेगी तथा मास में एक बैठक सांस्कृतिक कार्यक्रम की भी हुआ करेगी। इस निर्णय के अनुसार इस वर्ष परिषद् की कुल इक्कीस सामान्य एवं विशेष बैठकें हुईं :—

दिनांक दो मार्च १९७३ को एक विशेष बैठक हिन्दी विभाग के अध्यक्ष एवं परिषद् के सभापति डा० रमेशकुमार शर्मा की माताजी श्रीमती लक्ष्मी देवी शर्मा के असामयिक निधन पर शोक प्रकट करने हेतु हुई। इस बैठक में परिषद् की ओर से सहानुभूति एवं शोक का प्रस्ताव पारित किया गया, जिसकी प्रति संतप्त परिवार को भेजी गई।

परिषद् की दूसरी विशेष बैठक दिनांक ६ मार्च १९७३ को पटियाला में उत्तरीय प्रादेशिक भाषा केन्द्र के प्रिंसिपल डा० ओंकारनाथ कौल और उनके दल के सम्मान में आयोजित हुई। यह विशेष बैठक कश्मीरी भाषा के विकास से सम्बन्धित भाषण तथा सांस्कृतिक कार्यक्रम के रूप में सम्पन्न हुई जिस में हमारे विभाग के विद्यार्थियों तथा अतिथिगण ने भाग लिया।

परिषद् की एक और विशेष बैठक दिनांक अठारह जून को आगरा **विश्वविद्यालय के कुलपति डा० बालकृष्ण राव के सम्मान में आयोजित हुई। इसमें डा० राव ने 'साहित्य के उद्देश्य' पर प्रकाश डाला तथा कविता-पाठ किया।**

दिनांक उन्नीस जून १९७३ को **मेरठ विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष डा० रामप्रकाश अग्रवाल** के सम्मान में एक विशेष बैठक का आयोजन हुआ। श्री अग्रवाल ने 'साहित्य अनुशीलन' शीर्षक पर भाषण दिया।

तीस जून १९७३ को एक विशेष बैठक का आयोजन **सोपोर के कश्मीरी कवि श्री वासुदेव 'रेह' के सम्मान में आयोजित हुई**। उन्होंने अपनी कश्मीरी कविताएँ सुनाईं तथा अपने जीवन-दर्शन पर प्रकाश डाला।

परिषद् की एक अन्य विशेष बैठक दिनांक ११ जुलाई १९७३ को **दिल्ली विश्व विद्यालय के हिन्दी विभाग के रीडर डा० तारकनाथ बाली** के सम्मान में आयोजित हुई। डा० बाली ने 'छायावाद' पर एक तथ्यपूर्ण भाषण दिया।

दिनांक छः अगस्त १९७३ को एक विशेष बैठक कश्मीर विश्वविद्यालय के उपकुलपति ख्वाजा नूरुद्दीन के असामयिक निधन पर शोक प्रकट करने हेतु हुई। इस बैठक में परिषद् की ओर से सहानुभूति और शोक का प्रस्ताव पारित किया गया, जिस की एक प्रति संतप्त परिवार को भेजी गई।

दिनांक २५ अगस्त १९७३ को परिषद् की एक विशेष बैठक में **बंगला देश के पत्रकार श्री गुलाम मुहीउद्दीन के सम्मान में आयोजित** हुई। उन्होंने बंगला देश

के स्वतंत्रता संग्राम के संस्मरण सुनाकर पाकिस्तान द्वारा उनके देशवासियों पर किए गए पाशविक अत्याचारों पर प्रकाश डाला।

दिनांक २२ सितम्बर १९७३ को परिषद् की एक विशेष बैठक में प्रसिद्ध कश्मीरी कहानीकार (जिन्हें कहानी-साहित्य पर 'साहित्य अकादमी पुरस्कार' मिला है) **'पद्मश्री' श्री अख्तर मुहीउद्दीन ने कश्मीरी में भाषण दिया और अपनी कश्मीरी कहानी सुनाई।**

परिषद् की एक अन्य विशेष बैठक दिनांक २९ सितम्बर १९७३ को हुई जिसमें निबन्ध प्रतियोगिता का आयोजन हुआ। जिसमें पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध के विद्यार्थियों ने भाग लिया। पूर्वार्द्ध में **प्रथम पुरस्कार भूषणलाल, द्वितीय पुरस्कार कुमारी अनुपमा सूद एवं उत्तरार्द्ध में प्रथम पुरस्कार कुमारी वीणाकुमारी और द्वितीय पुरस्कार कुन्दन दर ने प्राप्त किया।**

इसके अतिरिक्त परिषद् की जितनी भी बैठकें हुईं उनमें विभाग के विद्यार्थियों ने अपनी लिखी रचनाएँ सुनाईं तथा डा० रमेशकुमार शर्मा ने ५ कवितायें, डा० मुहम्मद अयूव खाँ ने ३ कवितायें, उपसभापति डा० नीना कौल ने एक गद्यगीत, डा० भूषणलाल कौल ने दो लेख, श्री त्रिलोकीनाथ गंजू ने ५ कविताएँ सुनाकर विद्यार्थियों को लाभान्वित किया। इस वर्ष विद्यार्थियों द्वारा ४ लेख, ४ कहानियां, १ निवन्ध और ५ कवितायें लिखीं एवं सुनाई गईं। ये सभी मौलिक रचनायें थीं। इनमें से अनेक रचनाओं की प्रशंसा की गई तथा सर्वश्रेष्ठ रचनाओं पर पारितोषिक दिये जाने की घोषणा की गई और उन्हें विभागीय पत्रिका में छपाने का निर्णय किया गया।

इस वर्ष परिषद् में तीन सांस्कृतिक गोष्ठियाँ भी आयोजित हुईं जिनमें कुल ८ गीत, ३ ग़ज़लें और 'वालकाण्ड' के रेकार्ड सुनाये गये।

परिषद् के जिन उद्देश्यों का ज्ञापन आरम्भ में किया गया था लगभग सभी में उसे सफलता प्राप्त हुई। **परिषद् की कार्यकारिणी के सदस्य तथा दोनों कक्षाओं के प्रतिनिधियों सहित विभाग का एक शिष्ट-मण्डल प्रदेश के नये राज्यपाल तथा विश्व विद्यालय के कुलपति परमश्रेष्ठ श्रीमान लक्ष्मीकान्त झा से मिला और हिन्दी अध्ययन अध्यापन की समस्याएँ उनके सामने रखीं। कुलपति महोदय ने बड़े स्नेह से उन्हें सुना-समझा तथा अपनी कृपा-सहायता एवं स्नेह का आश्वासन सबको दिया।** डा० रमेशकुमार शर्मा, डा० मुहम्मद अयूव खाँ, कु०.नीना कौल, वीणाकुमारी, भूषणलाल, वसंती विछ्ल, अनुपमा सूद, कुन्दन दर, मधु सहगल, विमला पण्डित इस शिष्ट-मण्डल के सदस्य थे।

इस वर्ष विद्यार्थियों को आर्थिक सहायता ३०० रुपये और ५०० रुपये चपरासियों और लिपिक को ऋण के रूप में परिषद् की ओर से दिये गये।

इस वर्ष निम्नलिखित विद्यार्थियों को पदक तथा पारितोषिक दिये जाने की घोषणा की गई। ये पारितोषिक परिषद् के समापन-समारोह में दिये जाने का निर्णय किया गया।

१—स्वर्णपदक : प० जगन्नाथ तिवारी स्वर्ण-पदक १९७२ की एम० ए० की परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त करने हेतु—कुमारी नैनसी रैणा।

२—रजत पदक : पं० जगन्नाथ तिवारी रजत-पदक—१६७२ की एम० ए० पूर्वार्द्ध की परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त करने हेतु—कुमारी वीणाकुमारी।

३—साहित्यिक कृतियों के लिए रजत पदक :

१—वीणाकुमारी (उत्तरार्द्ध)
२—कुमारी अनुपमा सूद (पूर्वार्द्ध)
३—श्री भूषणलाल कौल (पूर्वार्द्ध)
४—कुमारी विजयमोहिनी कौल (अनुसंधित्सु)

निम्नलिखित विद्यार्थियों को परिषद् के पदाधिकारी नियुक्त होने के हेतु एवं परिषद् की गतिविधियों में सक्रिय भाग लेने के हेतु प्रमाण-पत्र दिये जाने का निर्णय हुआ :—

१—वीणा कुमारी (मंत्री)
२—श्री भूषणलाल कौल (उपमंत्री)
३—कुमारी वसन्ती त्रिछल (उपमंत्री सांस्कृतिक कार्यक्रम)
४—कुमारी अनुपमा सूद (कोषाध्यक्ष)
५—कुमारी फूल राज़दान (अनुसंधित्सु प्रतिनिधि)

जिन विद्यार्थियों को विभागीय पत्रिका 'वितस्ता' में छपी उनकी कृतियों एवं समय-समय पर परिषद् की गोष्ठियों में सुनाई गई उनकी रचनाओं के हेतु, पुस्तकें पारितोषिक रूप में प्रदान की जानी हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं :—

१—वीणाकुमारी (उत्तरार्द्ध)
२—कु० वसन्ती त्रिछल (उत्तरार्द्ध)
३—कु० अनुपमा सूद (पूर्वार्द्ध)
४—कु० विमला पण्डित (पूर्वार्द्ध)

गतवर्षों के समान परिषद् के तत्वाधान में इस वर्ष भी वाद-विवाद प्रतियोगिता करने का भी निश्चय किया गया परन्तु असामान्य परिस्थितियों के कारण विश्वविद्यालय अनिश्चित काल के लिए बन्द हो गया और यह प्रतियोगिता न हो सकी।

यह कहते हुए मुझे बड़ा क्षोभ होता है कि प्रदेश में अशान्तिपूर्ण वातावरण के कारण विश्वविद्यालय के समय से पूर्व बन्द हो जाने से परिषद् का समापन समारोह न हो पाया। **समापन समारोह का सभापतित्व करने की कृपापूर्ण स्वीकृति प्रदेश के राज्यपाल तथा विश्वविद्यालय के कुलपति परमश्रेष्ठ श्रीमान लक्ष्मीकान्त झा ने देदी थी, जिसके लिए हम उनके प्रति आभार प्रदर्शित करते हैं।**

अन्त में मैं, सभापति डा० रमेशकुमार शर्मा, उपसभापति डा० नीना कौल तथा विभाग के अन्य प्राध्यापकों के प्रति अपना हार्दिक आभार प्रकट करती हूँ जिनके स्नेहसिक्त-पथ-प्रदर्शन के फलस्वरूप परिषद् को अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई। इसके अतिरिक्त अनुसंधित्सु कुमारी विजयमोहिनी कौल तथा कुमारी फूल राज़दान तथा अपने अन्य सहयोगियों, कुमारी कुन्दन दर, कुमारी वसन्ती त्रिछल, कुमारी मधु सहगल,

भूषणलाल तथा अनुपमा सूद को भी मैं धन्यवाद देती हूँ और इन सबके सदसहयोग के लिए मैं गर्व और हर्ष का अनुभव् करती हूँ।

यह कहते हुए मुझे बड़ा हर्ष होता है कि इस वर्ष साहित्यिक एवं सांस्कृतिक दोनों क्षेत्रों में हिन्दी परिषद् को अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई है। परिषद् का कार्य करने में मैंने सदा हर्ष का अनुभव किया है। मैं आशा करती हूँ कि हिन्दी परिषद् भविष्य में भी इसी भाँति उत्तरोत्तर उन्नति करती रहेगी और अगले वर्ष के मन्त्री को मैं अपना कार्यभार सुचारु एवं सुव्यवस्थित रूप से सौंपने में समर्थ होऊँगी।

वीणाकुमारी
मन्त्री

++++++++++++++++

पानी बाढ़े नाव में घर में बाढ़े दाम।
दोनों हाथ उलीचिए यही सयानो काम॥

लार्ड क्लाइव के समय में कलकत्ता में जिस करोड़पति व्यापारी सेठ अमीचन्द को एक बड़ा घोटाला करने के दण्डस्वरूप फाँसी दी गई थी उसी के वंशज थे स्वनाम-धन्य भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, जो धन को हाथ का मैल समझकर उसे जी भरकर लुटाते थे। अच्छी साहित्यिक कृति पर इनाम दिए बिना वे रह नहीं सकते थे। अन्त में जब वे फाकेमस्ती की अवस्था में आ गए तब उनके पास केवल एक बहुमूल्य हीरे की अँगूठी ही पैतृक-सम्पत्ति के रूप में रह गई थी। एक दिन उन्हें ब्रज-भाषा के एक कवि ने एक फड़कता हुआ छन्द सुनाया और घर में अन्य कुछ न होने के कारण भारतेन्दु ने वह अँगूठी ही इनाम में दे डाली। एक मित्र ने उनसे कहा "यह आपने क्या किया? बाप दादों की अन्तिम निशानी थी यह अँगूठी।" भारतेन्दु शान्त भाव से बोले :—"धन की सहज वृत्ति यह है कि वह या तो खाता है या खाया जाता है, अगर मैं इसे नहीं खाऊँगा, तो मेरे बाप दादों की भाँति यह मुझे खा जायगा।"

* * *

ज्ञानी व्यक्ति के लिए यह संसार एक रंगमंचीय 'कामदी' है तथा संसारी व्यक्ति के लिए यह संसार एक व्यक्तिगत 'त्रासदी' है।

* * *

सम्पादकीय

जम्मू-कश्मीर प्रदेश के नये राज्यपाल तथा कश्मीर विश्वविद्यालय के नये कुलपति **परमश्रेष्ठ श्रीमान् लक्ष्मीकान्त झा** का हम स्वागत करते हैं। अमरीका में भारत के राजदूत, रिजर्व बैंक के गवर्नर, प्रधानमंत्री के मुख्य सलाहकार प्रभृत्ति अनेक विशिष्ट पदों पर आप रह चुके हैं। वित्त-मुद्रा विशेषज्ञ अर्थशास्त्री, राजनीतिज्ञ तथा कूटनीति विशेषज्ञ, कुशल प्रशासक एवं भाषाविद् के रूप में आप संसार-प्रसिद्ध हैं। हिन्दी-संस्कृत तथा कुछ अन्य भाषाओं का ज्ञान आपको शिक्षा के क्षेत्र में भी विशेष स्थान प्रदान करता है। लगभग चालीस वर्ष पूर्व से आप हिन्दी के मौलिक लेखन के लिए भी प्रसिद्ध हैं। 'सरस्वती' आदि ऐतिहासिक पत्रिकाओं में ही आपके लेख नहीं छपे थे, अपितु आपके ललित निबन्धों का एक संग्रह भी प्रकाशित हुआ था जो कि हिन्दी में अपने प्रकार के प्रथम प्रयासों में से माना जाता है। हिन्दी साहित्य के अध्ययन-अध्यापन से आपको विशेष रुचि है। वाराणसी से विशेष सम्पर्क रहने और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के साहित्य में विशेष रुचि रखने के फलस्वरूप आपके पास भारतेन्दु सम्बन्धी कुछ अलभ्य सामग्री एवं सूचनाएँ हैं। भारतेन्दु के नाटकों के सम्पादन एवं टीका-समीक्षा का आधिकारिक कार्य भारत सरकार ने आपको सौंपा है। आशा है यह कार्य शीघ्र ही सम्पन्न होगा और हिन्दी-संसार को एक विशेष उपलब्धि होगी। 'वितस्ता' परिवार एवं हिन्दी विभाग विशेषरूप से हर्षित है, इस आशा एवं विश्वास में कि हिन्दी विभाग एवं कश्मीर विश्वविद्यालय आपकी छत्रछाया में दिनोंदिन उन्नति करेंगे। **हम अपने कुलपति का पुनः स्वागत करते हैं।**

कश्मीर विश्वविद्यालय तथा हिन्दी विभाग के लिए यह दैव-प्रदत्त सौभाग्य ही कहा जा सकता है कि केवल नये कुलपति ही नहीं, निवृत्तमान कुलपति (तथा प्रदेश के राज्यपाल) **परमश्रेष्ठ श्रीमान् भगवान सहायजी** भी हिन्दी साहित्य में, (तथा हिन्दी-विभाग की उन्नति में) विशेष रुचि रखते थे। कलाकार की सौन्दर्यान्वेषक आत्मा तथा प्रशासक की बहुज्ञता से युक्त उनसे व्यक्तित्व ने प्रदेश तथा विश्वविद्यालय पर अपनी अमिट छाप छोड़ी है। हम उनका अभिनन्दन करते हैं।

कश्मीर विश्वविद्यालय के नये उपकुलपति ने भी दिसम्बर १९७३ में कार्य-भार संभाला है। उत्तर प्रदेश निवासी **श्री सैय्यद रज़ी-उल-हसन चिश्ती** विश्वविद्यालय के नये



श्री र० ह० चिश्ती
कश्मीर विश्वविद्यालय के उपकुलपति

उपकुलपति हैं। आपका जन्म सं० १६११ में हुआ तथा आपकी शिक्षा-दीक्षा अलीगढ़, आगरा तथा बरेली में हुई। बी० ए० की परीक्षा में प्रथम श्रेणी तथा विश्वविद्यालय में प्रथम स्थान प्राप्त करने के बाद आपने आगरा विश्वविद्यालय से एम० ए०, एलएल० बी० की उपाधियाँ प्राप्त कीं। अंग्रेजी-साहित्य में प्रथम स्थान प्राप्त करने के हेतु विश्व-विद्यालय ने आपको 'विलियम जोन्स पदक' से भी विभूषित किया था। सन् १६३३ में प्रदे-शीय प्रशासन सेवा की परीक्षा में भी आपने प्रथम स्थान प्राप्त किया था। अपने पद एवं कार्य में सर्वदा विशेष रुचि रखने की प्रवृत्ति ने आपको प्रत्येक पद पर सफल बनाया। श्रम, यातायात, सामुदायिक-विकास इत्यादि प्रदेशीय एवं केन्द्रीय विभिन्न विभागों के आप सचिव रह चुके हैं। अधुना भी आप केन्द्रीय शक्कर उद्योग आयोग के सदस्य-मंत्री हैं। कुछ समय पूर्व तक आप यू० एन० ओ० के भोजन एवं कृषि संगठन में भारत के आवासीय-प्रतिनिधि के रूप में रोम में थे। कश्मीर विश्वविद्यालय के आप ऐसे प्रथम उप-कुलपति हैं जो हिन्दी जानते हैं। हमें विश्वास है कि आपके कुशल निर्देशन में विभाग तथा विश्वविद्यालय और भी अधिक जीवन्त भूमिका अदा कर सकेंगे। हम आपका स्वागत करते हैं।

उपलब्धियाँ—

(१) विभाग में प्राध्यापक **कुमारी नीना कौल** ने **"पं० श्रीराम शर्मा व्यक्तित्व एवं कृतित्व"** विषय पर अपना शोध-प्रबन्ध परीक्षार्थ प्रेषित किया तथा उनकी मौखिक परीक्षा भी हो चुकी है। आशा है शीघ्र ही उनको पीएच० डी० की उपाधि प्रदान कर दी जायगी।

(२) श्री त्रिलोकीनाथ गंजू (विभाग में प्राध्यापक), कुमारी फूल राजदान, कुमारी विजयमोहनी कौल, श्री शशिशेखर तोषखांनी, श्रीमती रत्नीकुमारी रैणा तथा श्री सोमनाथ कौल अपना शोध कार्य समाप्त कर चुके हैं और आशा है कि १६७४ के मध्य तक वे अपना शोध-प्रबन्ध परीक्षार्थ प्रेषित कर देंगे। हर्ष का विषय है कि विभाग में जो शोध-कार्य हो रहा है उसकी प्रशंसा, कलेवर एवं कोटि दोनों की दृष्टि से, सम्पूर्ण भारत में की जा रही है। विशेषकर कश्मीरी भाषा (तथा श्रिण्या विभाषा) पर जो कार्य हमारे यहाँ किया गया है वह ग्रियर्सन द्वारा प्रचारित भ्रान्तियों को नष्ट करके संसार के विद्वानों के समक्ष कश्मीरी भाषा के उद्‌भव एवं स्वरूप के विषय में एक नया मार्ग प्रशस्त करेगा। हर्ष का विषय है कि हमें इस शोध-कार्य के लिए श्री त्रिलोकीनाथ गंजू जैसा धीमान विद्वान मिला है। वे हिन्दी, संस्कृत, कश्मीरी, अँग्रेजी, उर्दू (यत्किंचित फ़ारसी) भाषाओं के विद्वान हैं तथा उनमें शोध-कार्य करने की अद्वितीय लगन है।

(३) एम० ए० उत्तरार्द्ध की परीक्षा में कु० नैन्सी रैणा ने प्रथम स्थान प्राप्त करके पं० जगन्नाथ तिवारी **स्वर्ण-पदक** प्राप्त किया तथा पूर्वार्द्ध की परीक्षा में कु० वीणाकुमारी ने प्रथम स्थान प्राप्त करके **रजत-पदक** प्राप्त किया।

(४) कश्मीरी में स्नातकोत्तर श्रेणी का हिन्दी अध्यापन जब से आरम्भ हुआ

है तब से **प्रथम कश्मीरी मुसलमान छात्र** ने एम० ए० पूर्वार्द्ध में इस वर्ष प्रवेश लिया है। हम **श्री परवेज** का हर्ष-सहित स्वागत करते हैं और आशा करते हैं कि भविष्य में कश्मीर घाटी की बहुसंख्यक जनता में हिन्दी के प्रति दिनोंदिन रुचि एवं प्रेम बढ़ता जायगा।

(५) विभाग के प्राध्यापक डा० मुहम्मद अयूब खान तथा डा० भूषणलाल कौल ने डी० लिट० की उपाधि की दिशा में कार्य आरम्भ कर दिया है। आशा है शीघ्र ही वे अपना कार्य समाप्त कर लेंगे।

सम्पूर्ण देश में आज शिक्षा-क्षेत्र में जो संकट है, छात्र-शिक्षक-अभिभावाक-अधिकारी के चोगुट्ट में परस्पर जो अविश्वास तथा आस्थाहीनता का वातावरण हैं उसका उत्तरदायित्व छात्रों पर इतना नहीं है जितना कि अन्य तीनों पर है। अभिभावक छात्रों को सन्मार्ग की कठिनाइयों को झेलते हुए चलने की प्रेरणा नहीं दे पाते और शिक्षक उसके लिए उदाहरण नहीं उपस्थित कर पाते। अधिकारी वर्ग अकुशल एवं अयोग्य अध्यापकों की नियुक्ति-पदोन्नति द्वारा नैतिक मूल्यों का ह्रास करते हैं तथा अनुचित दवाबों में आकर छात्रों की आदत बिगाड़ते हैं। उत्तम व्यवहार एवं कार्य-पटुता के लिए छात्र एवं अध्यापकों का उत्साहवर्धन तथा अनुचित व्यवहार एवं अनैतिक कार्यों के लिए उनके प्रति दण्ड-नीति का प्रयोग जब तक नहीं किया जायगा, इस देश की भावी पीढ़ी तो क्या, वर्तमान पीढ़ी की भी भलाई नहीं हो सकती। हमारे प्रदेश तथा विश्वविद्यालय में जिन नये अधिकारियों ने कार्यभार संभाला है, हमें विश्वास है कि उनके कुशल संचालन में शिक्षा के क्षेत्र में एक नई दिशा की खोज की जायगी और एक नये, हितकर (चाहे दुर्गम) मार्ग का अनुसरण किया जायगा।

आभार प्रदर्शन—'वितस्ता' के प्रकाशन के मार्ग में जो सबसे बड़ी कठिनाई हमारे सामने आती है, वह है कश्मीरी भाषा के ध्वनि-चिह्नों का प्रेसों में अभाव। आगरा फाइन आर्ट प्रेस तथा उसके संचालक श्री गुलाबसिंह यादव के हम आभारी हैं कि उन्होंने केवल हमारे लिए इन ध्वनि-चिह्नों को ढलवाया है। उनका मुद्रणालय संसार में अकेला है जिसमें कश्मीरी भाषा (एवं श्रिण्या विभाषा) के वैज्ञानिक एवं शास्त्रीय मुद्रण की सुविधा है। हम उनके प्रति आभार प्रकट करते हैं।

श्री राजेन्द्र प्रसाद रैणा 'रा' तथा कु० वीणाकुमारी के प्रति भी हम आभार प्रदर्शित करते हैं, जिन्होंने पत्रिका की सामग्री के टंकण एवं चयन में हमारी विशेष सहायता की हैं।

अपने सुधी पाठकों से हम निवेदन करते हैं कि 'वितस्ता' पर वे अपनी स्वतंत्र एवं निष्पक्ष सम्मति हमें अवश्य भेजें। हम उसे प्रकाशित करने में गर्व का अनुभव करेंगे।

—रमेशकुमार शर्मा



वितस्ता

(मार्च १९७४)

सम्पादक :

डा० रमेशकुमार शर्मा,
आचार्य एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
कश्मीर विश्वविद्यालय,
अमरसिंह बाग, श्रीनगर, कश्मीर (भारत)

●

सहायक :

वीणाकुमारी एम० ए० (उत्तरार्द्ध)
मंत्री, हिन्दी परिषद्

●

प्रकाशक :

हिन्दी परिषद्
हिन्दी विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय
अमरसिंह बाग, पो० नसीमबाग, श्रीनगर,
कश्मीर (भारत)

एक प्रति—३ रु०

खण्ड ६, अंक १

राष्ट्र-गान

जन-गण-मन अधिनायक जय हे !
भारत भाग्य विधाता
पंजाब सिन्धु गुजरात मराठा, द्राविड़ उत्कलबंग,
विंध्य हिमाचल यमुना गंगा उच्छल जलधितरंग,
तव शुभनामे जागे, तव शुभ आशिष माँगे,
गाहे तव जय गाथा,
जन-गण मंगलदायक जय हे, भारत भाग्य विधाता
जय हे, जय हे, जय हे !
जय, जय, जय, जय हे !!



VITASTA

Journal of the Hindi Parishad of the Department of Hindi, University of Kashmir, Amarsinghbag, Srinagar, Kashmir, INDIA.

Vol. IX MARCH 1974 No. 1

मुद्रक : आगरा फाइन आर्ट प्रेस, राजामण्डी, आगरा-२